ॐ श्रीकृष्णाय नमः ॐ

वर्ष ५

भक्ति

संख्या ३

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते ।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम् ॥

सर्व धर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज ।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ॥

वार्षिक चन्दा २)

सम्पादक—
म० कृष्णानन्द, भूमानन्द

एक प्रति ।)

मार्गशीर्ष सम्वत् १९८७

भक्ति के नियम

१. भगवान् की भक्ति का प्रचार करना, गो रक्षण और इसके लिए गोचर भूमि छुड़वाना, जलाशय बनवाना, मनुष्य मात्र के लिए शिक्षा का प्रचार करना, वैदिक अनुभूत औषधियों का प्रचार करन, ग्रामों में परस्पर के झगड़े और वैमनस्य मिटा कर शान्ति व प्रेम बढ़ाना, सब संस्थाओं में भगवद्भक्ति और धर्म का भाव जाग्रत करना, राजा और प्रजा व ही का हित चिन्तन करना।

२. यह पत्र प्रतिमास की पूर्णिमा को प्रकाशित हुआ करेगा।

३. अग्रिम वार्षिक चन्दा सर्व साधारण से २) होगा

४. जो महानुभाव २५) रुपया देंगे वह पत्रके संरक्षक और ५) देने वाले सहायक होंगे

५. बाहर का कोई भी व्यापारिक विज्ञापन नहीं लिया जायगा।

६. लेखोंको प्रकाशित करना, न करना, घटाना, व बढ़ाना सर्वथा सम्पादक के अधिकार में होगा

७. लेख सम्बन्धी पत्र व्यवहार सम्पादक के नामसे और प्रबन्ध सम्बन्धी पत्र व्यवहार मैनेजर भक्ति के नाम से होना चाहिए

८. जिन ग्राहकों के पास जिस मास की "भक्ति" न पहुंचे, उनको स्थानीय पोस्ट आफिस में पूछ कर उस मास की अमावस्या से पूर्व कार्यालय में सूचना भेजनी चाहिये स्थानीय पोस्ट आफिस में बिना पड़ताल किये अथवा अमावस्या के बाद सूचना आने पर "भक्ति" नहीं भेजी जायगी

९. पत्रोत्तर के लिये जवाबी, कार्ड भेजना चाहिये।

विषय सूची।

विषय	लेखक	पृष्ठ
१. वेदोपदेश		१८९
२. भगवद्भक्ति	[ले० श्री स्वामी भोले बाबा जी	१९०
३. श्रीभगवद्भक्ति आश्रम (कविता)	[ले० श्रीमती मनभरी देवी	१९६
४. अवतार सम्प्रदाय और श्रीरामकृष्ण	[ले० श्री स्वामी मेघेश्वरानन्द जी	१९७
५. ईश्वर के सच्चे भक्त बनो	] ले० श्री स्वामी आत्मानन्द जी	२०१
६. शुद्ध संकल्प से विजय	[ले० श्री विश्वामित्र जी ब्रह्मचारी	२०२
७. गीता उपदेश (कविता)	[ले० श्रीमदन गोपाल जी सिंहल	२०५
८. सुखमय जीवन	[श्री सनत्कुमार जी निर्मल	२०६
९. धर्म-व्याख्या	[ले० श्री पं० रेवाधर जी पांडेय	२१०
१०. सुख का साधन	[ले० श्री किशोरी लाल जी	२१३
११. त्वंपद विवेक	[ले० श्री महात्मा राम	२१५
१२. खड्ग राम नाम है (कविता)	[ले० श्री गोविन्द राम जी	२१६
१३. क्वचिदन्यतोऽपि	[ले० श्री मधुमङ्गल जी मिश्र बी० ए०	२१६
१४. भजन		२१९

REGD. No. L. 2077

भक्ति प्रेस में मिलने वाली पुस्तकें।

१.	भगवद्गीता संस्कृत तथा भाषा टीका सहिता	मूल्य	॥=)
२.	भगवद्गीता दशम अध्याय पर्यन्त ...	"	।=)
३.	वेदोपनिषद्	"	।)
४.	अष्टोत्तरशतमन्त्रमाला	"	।)
५.	ज्ञानधर्मोपदेश	"	।।।)
६	भक्ति ज्ञान योग संग्रह	"	=।।)
७.	सत्य शब्द संग्रह गुटका	"	।)
८.	सत्य शब्द संग्रह	"	।=)
९.	शब्दसंग्रह	"	=।।)
१०.	सारसंग्रह	"	=)
११.	भाषा फक्किका प्रकाश	"	।=)
१२.	भगवद्भक्तांक	"	॥=)
१३.	भगवदंक	"	॥।)
१४.	गवांक	"	१)

नोटः-एक रुपये से कम मूल्य की पुस्तक मंगाने वालों को डाक महसूल सहित टिकट भेजने चाहियें।

मिलने का पताः-

श्री भगवद्भक्ति आश्रम, रेवाड़ी।

मुद्रक तथा प्रकाशक भूमानन्द ब्रह्मचारी "भक्ति प्रेस" भगवद्भक्ति आश्रम, रेवाड़ी।

त्रिपुरारी-शिव

MAHARATHI PRESS, DELHI.

जनता में भगवद्भक्ति भाव को जाग्रत करने वाली सचित्र मासिक पत्रिका ।

वर्ष ५ | श्री भगवद्भक्ति आश्रम रेवाड़ी, मार्गशीर्ष पूर्णिमा सं० १९८७ | अङ्क ३

वेदोपदेश

संपूषन्विदुषा नय यो अंजसानुशासती । य एवेदमिति ब्रवत ॥ १ ॥

हे पूषन् ! आप ऐसे विद्वान् पुरुष के उपदेश से हम को चलावें जो हमें सन्मार्ग बताकर हमारी सब प्रकार की अवनति दूर करके हमको अभ्युदय शाली बनावे ॥ १ ॥

समुपूष्णा गमेमहियो गृहां अभिशासति । इमे एवेति च ब्रवत ॥ २ ॥

हेपूषन् ! सर्वपोषक परमात्मन् ! आप हमें ऐसे शिक्षकों द्वारा शिक्षा करायें जो चारों आश्रमों की विद्या का उपदेश करके हमारे जीवन को उच्च बनावें ॥ १ ॥

पूष्णश्चक्रं न रिष्यति न कोशोऽवपद्यते । नो अस्य व्यथते पविः ॥ ३ ॥

हे पूषन ! आप का दण्ड किसी अवस्था में भी रुक नहीं सकता और आप का कोष, सदैव परिपूर्ण रहता है उस में कभी किसी तरह की न्यूनता नहीं हो सकती ॥ ३ ॥

यो अस्मै हविषाविधन्न तं पृषापि मृष्यते । प्रथमो विन्दते वसु ॥ ४ ॥

जो पुरुष परमात्मपरायण होकर जप तप तथा यज्ञादि कर्म करने वाले और वेदोक्त धर्मपर चलने वाले होते हैं वही सब से प्रथम ऐश्वर्य के स्वामी बनते हैं ॥ ४ ॥

पुषा गा अन्वेतु नः पूषा रक्षत्वर्वतः । पुषा वाजं सनोतु नः ॥ ५ ॥

हे पूषन् ! आप हमारी सब ज्ञानेन्द्रियों को पवित्र करें, हे सर्वव्यापक ! हमारे विज्ञान की रक्षा करो और वही सर्व पोषक परमात्मा हमारे यश की रक्षा करे ॥ ५ ॥

भगवद्भक्ति

[लेo श्री पूज्य स्वामी भोले बाबा जी]

नमः कृष्णाय देवाय, लीलया वपुधारिणे ।
सच्चिदानन्दरूपाय, जगदानन्ददायिने ॥

मंसाराम-महाराज ! कल आपने प्रतिमा अर्चन की निष्ठा और अनेक भक्तों की कथायें सुनायी थीं आज कृपया लीला निष्ठा सुनाइये ।

लीला निष्ठा ।

मस्तराम-हे मंसाराम ! रासलीला, रामलीला और नृसिंहलीला बनाकर जो भगवत् का पूजन किया जाता है, यह उस का नामानुकरण है, यह निष्ठा ऐसी परम पुनीत है कि इसके प्रताप से सैंकड़ों हजारों महापापी भगवत् परायण हुये हैं। भागवत् से यह बात प्रसिद्ध है कि रासलीला के प्रारम्भ में जब भगवत् गोपियों की दृष्टि से अन्तर्द्धान हो गये, तो वे मतवाली होकर रूप अनूप के विरह में वन और कुंजों में द्रुम और लताओं से पूछती हुई भगवान् को ढूंढने लगीं । रोना, आंसू बहाना, विनय, प्रार्थना, गिड़गिड़ाना और स्तुति आदि जो कुछ उपाय उनको सूझ पड़ा, वह सब उन्होंने किया परन्तु भगवत् प्रकट न हुये । अन्त में भगवत् के किये हुये चरित्रों को सब गोपियां करने लगीं अर्थात् कोई गोपी कृष्ण बनी, कोई बालक, कोई गौ और कोई बछड़ा बनी और भगवत् के जन्म से लेकर जो २ लीला भगवत् ने की थीं, वे सब लीलायें कीं, तब भगवत् प्रसन्न होकर प्रकट हुये । इस से यह बात सिद्ध होगई कि भगवत् अपने लीलानुकरण पर ऐसे रीझते हैं कि आप प्रकट हो जाते हैं । नारायण भट्ट की कथा में मैं यह बात तुम से कह आया हूं, इससे निश्चय होता है कि भग-

वत् को अपना लीलानुकरण अपने चरित्रों के समान ही प्यारा है और प्रसिद्ध है कि शास्त्रों में मूर्ति की उपासना और पूजन के निमित्त आज्ञा है और वह मूर्ति, पाषाण, दारु, धातु इत्यादि की होती है, जिन को मनुष्य अपने हाथ से बनाते हैं और बहुत से दीवार आदि पर चिन्ह खेंच कर अथवा वेदी और पीठ बना कर पूजा आदि करते हैं और उसके प्रभाव से अपने विश्वास के अनुसार वांछित फल को प्राप्त होते हैं। तब हे मंसाराम! विचारना चाहिये कि ये लीलानुकरण मूर्ति प्रथम तो उन ब्राह्मणों के बालक होते हैं, जो ब्राह्मण भगवत् और वेद के वचन से जन्म से ही भगवत् रूप होते हैं, फिर अपना शृंगार भी भगवत् रूप बनाते हैं और शास्त्रानुसार उनकी प्रतिष्ठा भी की जाती है, तो यदि कोई विश्वास पूर्वक उनके पूजन को करेगा, वह अपने मनोरथ को क्यों नहीं प्राप्त होगा? अवश्य होगा! सिवाय इसके दूसरी मूर्तियों से विलम्ब करके मनोरथ सिद्ध होता है और लीला मूर्तियों से जो शीघ्र ही हृदय की निर्मलता और भगवत् की प्राप्ति होती है क्योंकि अर्चा मूर्ति आदि से तो भगवत् की प्राप्ति तब होती है कि जब पहिले तो उस मूर्ति में अच्छे प्रकार से मन लग जाय, दूसरी ओर न जाय, दूसरे भगवच्चरित्रों का श्रवण कीर्तन और सत्संग हो, इसलिये शिलादि मूर्तियों में प्रीति से मन कम लगता है क्योंकि जिस को दृढ़ स्नेह कहते हैं, वह घुनाक्षर न्याय है. हो जाय तो हो जाय, न हो तो न भी हो और श्रवण, कीर्तन और सत्संग खोजने से मिलता है और लीलानुकरण मूर्ति पूजन सेवन से श्रवणादि सब सामग्री एक स्थान पर एक ही काल में प्राप्त होजाती हैं। प्रत्यक्ष सुन्दरताई और वस्त्राभरणों की चमक दमक से प्रीति तो तुरन्त ही उत्पन्न हो आती है और भगवच्चरित्रों का श्रवण, कीर्तन, और भगवद्भक्तों का सत्संग बिना खोजे प्राप्त होता है। एक बात और भी है कि भगवत् मूर्ति का पूजन इस हेतु है कि उसके सहारे से ही मुख्य भगवत् मूर्ति के ध्यान में मन दृढ़ हो जाय, इसलिये लीलानुकरण मूर्ति के अवलम्ब से मुख्य भगवत् की प्रीति होना शीघ्र ही संभव है, इसलिये अन्य मूर्ति निष्ठा से लीलानुकरण मूर्ति निष्ठा उत्तमतर है। इस कारण बहुत ही उचित है कि भगवत् लीलानुकरण मूर्ति को स्वयं भगवत् की मूर्ति जान कर विश्वास युक्त होकर पूजा करे तो अपने मन वांछित अर्थ को अवश्य प्राप्त होगा, इसमें संदेह नहीं है।

हे मंसाराम! कलियुग के महापापात्मा लोगों के उद्धार हेतु भगवत् ने अनेक सहज से सहज उपाय बताये हैं कि तुरन्त बेड़ा पार हो जाय। परन्तु हम लोगों की ऐसी अभाग्यता है कि उन मूर्तियों को भगवत् रूप जानना और उनके चरित्रों में चित्त लगाना तो दूर रहा, ढिटाई और अविश्वास इतना अधिक है कि जिसका वर्णन करना ही अच्छा नहीं है। ऐसे महापापी, विश्वासहीन, ढीट अवश्य ही नरक में पड़ेंगे और किसी प्रकार पापों से मुक्त न होंगे। हे मंसाराम! विश्वास ही मुख्य साधन है। यदि विश्वास अच्छा होता है तो उत्तम पद की प्राप्ति होती है और अनिष्ट होता है तो पाताल की प्राप्ति होती है क्योंकि वेद शास्त्रों ने शुभाशुभ कर्मों के फल देने के लिये भगवत् को कल्प वृक्ष सदृश लिखा है। कल्पवृक्ष का स्वभाव है कि वांछित फल देता है। एक पथिक संयोग वश कल्पवृक्ष के नीचे पहुंच गया। मनोरथ करने लगा कि शीतल वायु चलता तो अच्छा था, इतना मनोरथ करते ही शीतल वायु चलने लगा। फिर मनोरथ किया कि

शीतल जल से पूर्ण एक तड़ाग बन जाय और एक हरा बाग लग जाय मनोरथ करते ही तड़ाग बन गया और हरा बगीचा भी लग गया ! फिर उसे दिव्य वस्त्र, आभूषण, सामिग्री, भोग विलास, राग रंग और सुन्दरी नायिकाओं की चाहना हुई। तुरंत ही सब सामग्री आगई और सुन्दर नायिकायें स्वर ताल सहित गाने लगीं ! जब वह उन नायिकाओं के साथ सुख विलास में लीन हुआ, तो अकस्मात् यह चिन्ता हो आई कि कहीं ऐसा न हो कि इनका मालिक दण्ड देने लगे ! तुरन्त ही शिर पर जूतियां पड़ने लगीं और इतनी पड़ी कि बिचारे का शिर पिलपिला हो गया ! इसी पुकार विश्वास के अनुसार भगवत् सब फल देते हैं। गीता में भगवान् का वचन है कि "मन ही मनुष्यों के बन्ध और मोक्ष का कारण है, जो कोई जिस विश्वास से मुझ में मन लगाता है, वैसा ही फल उसको मिलता है"। यद्यपि लीलानुकरण के भक्तों की कथायें कहूंगा परन्तु दो एक बातें यहां भी कहता हूं।

मीर माधव जी भगवद्भक्त विख्यात हैं। उनकी भक्ति का आरंभ लीलानुकरण से हुआ था। वृत्तान्त यह है कि यह अमीर कबीर थे, मजहब मोहम्मदी रखते थे। एक बार राह चलते हुये मथुरा जी में पहुंचे। इनका मुंशी भगवत् उपासक था, उससे रास लीला की बड़ाई सुनकर इनको रास देखने की चाह हुई। मुंशीने उनका बड़ी प्रीति देख कर पूजा करना, मसनद से बैठना, बैठाना, ये सब ठहरा कर रास करने वालों को बुलाया। अमीर ने प्रेम पूर्वक मर्यादानुसार भगवच्चरित्र देखे। और वे मन और प्राण से वास्तव स्वरूप आनन्दनन्दन महाराज के चाहने वाले होगये। सब माल और रुपया भगवत के भेंट कर दिया, पीछे घर बार संसार व्यवहार कपड़े पोशाक सब को त्याग कर श्रीकृष्ण। श्रीकृष्ण ! कहते हुये वृन्दावन की कुंजों में अपने प्राण प्यारे को ढूंढने फिरने लगे ! इनके मुख से अनुक्षण भगवत् का नाम निकलता था, इसलिये लोगों ने इन का नाम मीर माधव रख दिया और भगवत् भक्तों में इनकी गणना की। इनकी काव्य रचना में भगवत् के बाल चरित्र बहुत हैं, एक कसीदे की पहिली तुक यह है।

'के जि खुदरानी सखुन श्री कृष्ण गो। श्री कृष्ण गो।
बुगुजारकित्र मारा मन श्रीकृष्ण गो श्रीकृष्ण गो॥

अर्थ इसका यह है कि जब तक वचन बोलना तेरे अधीन है तब तक श्रीकृष्ण कह, श्रीकृष्ण कह। हम, हमारा और अभिमान छोड़ कर श्रीकृष्ण कह, श्रीकृष्ण कह।'

थोड़े दिनों में भगवत् का रूप इनके हृदय में प्रकट हुआ और यह सिद्ध होगये, उस रूप अनूप के रस में मत्त रहने लगे। पश्चात् इनको श्रीमद्भागवत् सुनने की इच्छा हुई परन्तु किसी ने इनको मंदिर में जाने नहीं दिया। भगवत् ने अपने एक भक्त गोसाईं को इन्हें भागवत् सुनाने की आज्ञा दी। गोसाईं ने बड़े आदर से कथा सुनाना आरम्भ किया। एकबार कथा कहते २ बहुत रात हो गई और मीरमाधव मंदिर में सो रहे। आधी रात को उन्हें भूख लगी। भगवत् ने विचार किया कि आज मीरमाधव हमारे महमान हैं, बड़े शोक की बात है कि यह भूखे रहें। ऐसा विचार कर अपने भोग के थाल में लड्डू और जलेबी और लोटे में जल लेकर भगवत् दश बारह वर्ष के बालक के स्वरूप से आये और कहने लगे कि गोसाईं जी ने प्रसाद भेजा है। मीर माधव जी ने भोग लेकर खा लिया और सोगये। प्रभात को जब सोने का थाल और लोटा न पाया तो पुजारी खोजने

लगे। मीर माधव जी के पास पड़े हुये देख कर उन्हों ने इन को खूब मारा। जब वे भगवत् मंदिर में गये तो भगवत् सब के वस्त्र फटे पाये और भगवत् मूर्ति की चेष्टा भी अति उदास और क्रोध युक्त देखी। तुरन्त पुजारी गोसाईं जी के पास गये और सब वृत्तांत कहा। गोसाईं जी नंगे पांव दौड़े आये और मीरमाधव जी के चरणों में शिर रख कर बहुत विनय करने लगे। जब मीरमाधव जी ने पुजारियों का अपराध क्षमा कर दिया तब भगवत् प्रसन्न हुये। इस से यह शिक्षा मिलती है कि भक्त को भगवत् से कम न समझना चाहिये।

श्रोताओं का संदेह दूर करने के लिये गोसाईं जी मुसलमान को अपने पास बैठाकर कथा सुनाते हैं, यह उचित नहीं है। सब का संदेह दूर करने के लिये गोसाईं जी ने एक दिन सब श्रोताओं से पूछा कि कल कहां तक कथा हुई थी। किसी ने कुछ न बतलाया, मीरमाधव जी ने कथा के आरम्भ से अन्त तक सब श्लोक और उन का अर्थ जो अक्षर गोसाईं जी के मुख से निकले थे सब सुना दिये। संदेह करने वाले लज्जित हुये।

एक बार किसी राजा ने श्रीबिहारी जी के लिये अतर भेजा। मीरमाधव जी ने हलकारे से लेकर सब अतर धरती पर डाल दिया, सब मंदिर के भीतर सुगन्ध छा गई और बिहारी जी का भी अंग और वस्त्र अतर से तर हो गये।

चन्दा नामक एक डाकू ठगी और डाकामारी किया करता था। उसने एक बड़े आदमी के यहां रास चरित्र होने का समाचार पाया और यह भी सुना कि एक लाख रुपये का जेवर और असबाब रास के समय इकट्ठा होगा। यह सुनकर पीठ ठोक कर पचासों हथियारबन्द आदमियों समेत वह रास में आपहुंचा उसके आते ही राह में हलचल मच गई और शोर होने लगा शोर सुन कर रास देखने वाले अपना २ जीव लेकर भाग गये। भगवत् स्वरूप जो रास में थे, उन्होंने उस बड़े आदमी से पूछा कि क्या शोर गुल है। उसने डाकू आने का वृत्तांत कहा। भगवत् मूर्ति ने कहा कि क्या डर है, आने दो, इतने ही में डाकू सीधा निर्भय होकर सिंहासन के समीप आपहुंचा और चाहता था कि गहनों और असबाब पर हाथ डाले। भगवत् मूर्ति ने सिंहासन पर से उठ कर और चन्दा का हाथ पकड़ कर एक घूंसा उसकी छाती पर मारा और कहा कि इतनी ढिठाई? भगवत् स्वरूप का वयक्रम दश बारह वर्ष से अधिक न था, फिरभी वह पहलवान डाकू घूंसे की चोट से ऐसा लौट गया कि लंगोट की भी सुध न रही और उस के साथी जान हाथ से खो कर पैर से माथे तक चित्र की पुतली होगये। पीछे जब डाकू की मूर्छा जागी, तो अपने हथियारों को भगवत् के आगे रखकर इस प्रीति और प्यार से चरण कमल पकड़ लिये कि फिर हृदय से न छोड़े और सब त्याग कर भगवत् परायण होगया।

एक वृत्तांत यह है कि एक बार किसी बड़े आदमी ने यमुना जी के किनारे रास लीला कराई। जब काली के नाथने का चरित्र आरंभ हुआ तो किसी ने लोगों से पूछा कि क्या भगवत् स्वरूप यमुना में कूदेंगे जो कमर कस रहे हैं? यह बात भगवत् स्वरूप के कान में भी पड़गई। आप कहने लगे कि हां और यह कह कर यमुना जी में कूद पड़े और एक ऐसे भारी सर्प को यमुना जी में से पकड़ लाये जो दश बीस आदमियों से भी न उठ सके। उस समय उस बड़े आदमी ने भगवत् रूप की झलक और प्रकाश इस

प्रकार देखा कि उसकी आखें चकाचौंध के मारे अंधी होगई और वह बेसुध होकर गिर पड़ा पीछे जब उसे शरीर का ज्ञान हुआ, तो कृष्ण चरण का हृदय में ध्यान धरके सब कुछ त्याग दिया और भगवत् परायण होगया।

काशी में पाठक जी रघुनन्दन महाराज के परमभक्त थे। एक दिन उन्होंने भगवत् से साक्षात् दर्शन देने की प्रार्थना की। आज्ञा हुई कि दशहरे के दिन राम लीला में भरत मिलाप के समय दर्शन होंगे। परीक्षा उस की यह है कि जब हम आप तुम से कोई वस्तु मागें, तो समझना कि दर्शन हुये। जब भरत मिलाप का दिन आया तो पाठक जी रामलीला देखने गये। मिलाप होने के पीछे जिस समय भरत जी आंखों से आनन्द और प्रेम का जल बरसाते हुये श्री रघुनन्दन स्वामी के चरणारविन्द पकड़ रहे थे, उस समय उस राम मूर्ति ने पाठक जी को बुलाया। पाठक जी लोगों के ढूंढने से आये। भगवत् स्वरूप ने आज्ञा की कि कुछ मिठाई प्रसाद के निमित्त और थोड़ा जल लाओ! पाठक जी तुरन्त ले आये। भगवत् ने थोड़ा भोग लगा कर और जल पीकर पाठक जी को वह प्रसाद दे दिया। उस समय पाठक जी ने मनोहर मूर्त की ऐसी झलक देखी, जैसी कि शास्त्रों में लिखी है। पाठक जी देख कर बेसुध होगये।

हे मंसाराम! इस प्रकार की कितनी ही कथायें हैं, विस्तार के भय से नहीं कहता। दो चार बार राम लीला में कितने ही ऐसे मनुष्य देखने में आये कि अत्यंत प्रेम के वश अचेतन और बेसुध होजाते थे और कितने ऐसे देखने में आये कि प्रेम से रास लीला में बेसुध होजाते थे और कितने ऐसे देखने में आये कि पहिले केवल देखने के निमित्त गये और पीछे उसी के प्रभाव से निज पथ छोड़ कर भगवत् संमुख होगये एक भक्त इस प्रकार भावना करता है:-

भावना

हे भगवत्! मेरा मन पापी आपके संमुख क्यों नहीं होता? क्या अच्छी बात हो कि मेरा पापी मन अपने चंचल स्वभाव को छोड़ कर इसी लीलानुकरण के अवलम्ब से भगवत् के संमुख हो जाय! बड़ा भारी आश्चर्य तो यह है कि संसार के हजारों प्रकार के दुःख आये दिन देखता है, फिर भी उन से भय नहीं करता, उन्हीं में फंस जाता है, भगवच्चरणों में नहीं लगता। यद्यपि शास्त्र और सन्त महात्माओं से सुनता रहता है कि धन और भोगादिक प्रारब्ध वश आप से आप ही प्राप्त होते हैं, फिर भी विश्वास नहीं करता और उनके हेतु सहस्रों प्रकार के उपाय और मिथ्या बोलना आदि अनेक कुकर्म करता रहता है। यह भी सुन रक्खा है कि भगवत् की प्राप्ति करोड़ों जन्मों तक भी नहीं होती और भगवत् प्राप्ति के बाद किसी प्रकार के दुःख की प्राप्ति नहीं होती किन्तु अखण्ड आनन्द प्राप्त होता है। ऐसे भगवत् की भक्ति से असावधान और विमुख रहता है कि भूल कर भी भगवत् का चिंतन नहीं करता। बावरे मन! तेरी बुद्धि और चतुराई को धिक्कार है! अरे अभागे! इस समाज और शोभा का ध्यान किया कर!

ध्यान समाज।

मिथिला नगर है, विदेह महाराज का शोभायमान बगीचा है, आज बगीचे की शोभा और दिनों से दूनी, चौगुणी, दश गुणी है क्योंकि मायापति श्री रघुनन्दन महाराज और अनादि शक्ति श्रीजनक नन्दनी का आज यहां मिलाप होने वाला है, इसको

सुन कर ब्रह्मादिक देवता, महर्षि और सिद्ध अपनी शक्तियों सहित आकर जगदीश्वर और जगदीश्वरी का दर्शन करने के लिये और दोनों का द्वन्द्व रस युक्त देखने के लिये वृक्षों के पत्तों में छुप गये हैं और देखना चाहते हैं कि आज देखें कि भगवत् की जय होती है अथवा भगवती की ? सीता जी की एक सखी श्रीराम लक्ष्मण के रूप अनूप को देख कर बावली सी होगई और अपनी स्वामिनी को दोनों वीरों के आने की खबर दी है। मैंहदी की टट्टी में एक तरफ श्रीरघुनन्दन और लषणलाल खड़े हैं और दूसरी ओर अपनी सखियों सहित जानकी जी खड़ी हैं। श्रीराम की दृष्टि सीता जी पर और सीताजी की दृष्टि श्रीराम पर पड़ी है ! सीता जी की अपूर्व शोभा को देख कर भगवान् विह्वल होकर लक्ष्मण जी से उनके रूप की सराहना करने लगे हैं। उधर सीता जी भी राम रूप को देख कर विह्वलसी होने लगी हैं परन्तु अपनी दशा संभाल ली है और कुछ नहीं बोली हैं, इस प्रकार धीर वीर रघुनन्दन को अपनी धीरता, वीरता और उदारता से हरा कर भगवती चलदी हैं, श्रीरघुनन्दन के मन में क्षोभ आया इसलिये वे याचक बने और जनकनन्दनी के मन में क्षोभ नहीं आया, इसलिये वे उदार दानी बनी, इस प्रकार जनकनन्दनी की जय और रघुवीर की पराजय देख कर ब्रह्मादिक देवता और भक्तजन परमानन्द को प्राप्त हो रहे हैं और दोनों की जय२ कार बोल रहे हैं। श्रीरघुनन्दन की पराजय का यह कारण था, कि उनको धनुष तोड़ने का निश्चय था, इसलिये उन्होंने किशोरी जी को अपना मान लिया और अपना मन उन को दे दिया। किशोरी धनुष टूटने तक अपने को पिता के आधीन समझ कर सावधान रहीं और अपना प्रेम प्रकट नहीं किया।

मस्तराम–भाई मंसाराम ! यदि तेरा मन भी यह ध्यान करने लगेगा, तब तो तू शीघ्र ही कायापलट हो जाय, कामादि सब दोष दूर हो जांय और संतोषादि सब गुण तुझ में आजांय। अच्छा ! अब इस निष्ठा के भक्तों की कथा कहता हूं, ध्यान देकर सुनः–

कथा अली भगवान् की।

अली भगवान् पहिले रघुनन्दन स्वामी में निष्ठा रखते थे परन्तु वृन्दावन में आकर उनकी कुछ और ही गति होगई अर्थात् जब रास चरित्र में भगवत् का मन मोहन स्वरूप देखा, तो उस छवि माधुरी के प्रेम में वे अपनी इष्ट उपासना सब भूल गये और श्री प्रिया प्रीतम के रूप अनूप में मग्न होकर उन्हीं के होगये, बिहारी जी के चरित्र और रास लीला के चिंतन पूजन में उनका मन लग गया और वह ही स्वरूप उनके मन में बस गया। उनके गुरुने जो यह वृत्तांत सुना तो वे वृन्दावन में आये। उनका आना सुन कर अली भगवान् किसी वन में चले गये। वहां भी गुरु जा पहुंचे, तब अली भगवान् दंडवत् करके विनय करने लगे कि महाराज मेरे गुरु और स्वामी आप हैं परन्तु व्रज नागर जी ने बरबस मेरे मन को अपनी ओर लगा लिया है। गुरु जी उनकी दृढ़ प्रीति देख कर प्रसन्न हुये और श्रीकृष्ण स्वामी के चरित्रों और प्रेम का उपदेश देकर चले आये। हे मंसाराम ! गुरु के आने का यह अभिप्राय था कि अली भगवान् पहिले तो रामोपासक था, अब रासलीला को देख कर कृष्णोपासक होगया। कल यदि किसी अन्य मत मतांतर वाले के पास बैठेगा, तो उधर को ही झुक जायगा और किसी ओर का भी नहीं रहेगा,

दोनों लोकों से जाता रहेगा क्योंकि भक्ति का स्वरूप शास्त्रों में यह लिखा है। कि मन की वृत्ति अचल एक ओर लगी रहे। जब गुरु ने अली भगवान् के मन को दृढ़ देखा तो प्रसन्न हुये।

कथा विपुल बिट्ठल की।

विपुल बिट्ठल जी स्वामी हरिदास के चेले निधिवन में भगवद्भक्तमाधुर्य उपासक थे। जब स्वामी हरिदास भगवत् के परम पद को प्राप्त हुये तो उनके वियोग से इनको परम शोक हुआ। एक बार जब कीर्तन करते हुये भगवत् स्वरूप में मग्न हो गये तो उनको अपने गुरु के दर्शन हुये। इनका आनन्द दुगना हो गया। फिर तो भगवत् के छवि समुद्र में ऐसा डुबकियां लगाई कि फिर निकल न सके और अन्त में भगवत् के नित्य विहार में जा मिले।

इसी प्रकार रामराय, खड्गसेन, बल्लभ और नाथभट्ट और भी इसी निष्ठा के भक्त हुये हैं, उन की कथा भक्तमाल में प्रसिद्ध है।

कुं— लीला निष्ठा अति सुगम, उपजावत है प्रेम।
मन रंगता हरि रंग में, भूल जाय सब नेम॥
भूल जाय सब नेम, रूप मन में बस जावे।
मन हो जावे शुद्ध, धाम भगवत् का पावे॥
भोला! भज श्रीकृष्ण, नाग काली जिन कीला।
भगवत् गुण करि गान देख अद्भुत, हरि लीला॥

श्रीभगवद्भक्ति आश्रम।

[ले० श्रीमती मनमोहनदेवीपुट्टीवालजी]

अतिकमनीय जिसकी कीर्ति-कल्प-वल्ली की,
मधुर-सुगन्ध ने व्याप्त भारत किया है॥
जिस के अनेक अलौकिक शुचि-गुणों ने,
जनता में अपूर्व शुभ भाव भर दिया है॥
नेत्र थे तृषित मेरे जिसकी द्युति पान को,
जिसकी महिमा ने विश्व मोहित किया है॥
आज वह श्रीमद्भगवद्भक्ति आश्रम देख,
मैंने कृतकृत्य अपना जीवन किया है॥ १॥

अतुल विकराल कलि-काल की कालिमा ने,
अखिल इला को कालिमा-मय बनाया है॥
भ्रान्त भूत मात्र है लोचन विहीन जैसे,
खोज हुये थकित न सुपन्थ हाथ आया है॥
कलि की यह कुटिल कुचाल देख धाता ने,
महा-महनीय एक महात्मा पठाया है॥
जिसने श्रीभगवद्भक्ति आश्रम रूपी ज्योति-
जगा के जगत् को सत्य-मार्ग दिखाया है॥ २॥

रैवतपुर (रेवाड़ी) के समीप विशुद्ध वायु में,
विस्तृत भू भाग पर यह आश्रम महान् है॥
निष्पक्षपात भूतमात्र का यह रक्षक ज्यों,
सर्व प्राणियों का प्रति-पालक भगवान् है॥
भारत की प्राचीन प्रणाली का प्रवर्तक है,
विधवा अछूत-पति गोजाति का प्राण है॥
ब्रह्मचर्य का जीवन सजीवन स्वजाति का,
स्वावलम्बी जीवन का करता प्रदान है॥ ३

अश्वत्थ, उदुम्बर, वट, आम्रादि विटपों की,
उन्नत पंक्तियों से अधिरक्ष्य मान है॥

प्रफुल्ल-वल्लरियां कहीं झूमती हैं वृक्षों पै,
कहीं लताओं का बना ललित-वितान है ॥
कहीं लता गुल्मों से गुम्फित मञ्जु मन्दिर हैं,
कहीं लता-तोरण से अलंकृत-स्थान है ॥
सु-गन्ध-मय सुन्दर सुरेन्द्र के नन्दन सा,
स्नेह की खान जिसका उत्तम-उद्यान है ॥४॥
मञ्जुलनिकुञ्जों में गुञ्जत चञ्चरीक हैं,
निर्भय मृग-यूथ जहां शान्ति सुख पाते हैं ॥
करि- पिक- सारिकादि विविध-विहङ्ग वृन्द,
सरस स्व-बोली में पीयूष बरसाते हैं ॥
जिसमें घन-ध्वनि सी सुन गो-दोहन-ध्वनि,
मोर कर शोर नृत्य आनन्द मनाते हैं ॥
हिंसक-पशु-पक्षीभी त्याग निज-शत्रु-भाव,
जिसमें मिल प्रेम से आश्रम-गुण गाते हैं ॥५॥
रुचिर किनारे पर जिसके पृथक् पृथक्,
चारों ओर सुन्दर-साधु-सदन सुहाते हैं ॥
स्फटिक-शकल सा निर्मल प्रालेय-शीतल,
देख जल जिसका मुनि मन लुभाते हैं ॥
ललित-शिलाओं से घटित हैं घाट जिसके,
दर्शक-जनों के मन आनंद बढ़ाते हैं ॥
आश्रम का एक ऐसा पुनीत सरोवर है,
जिसके स्नान से कलि-मल धुल जाते हैं ॥६॥
ब्रह्मचर्य्य आश्रम एक जिसमें सु-संस्था है,
जिसके ब्रह्मचारी आदर्श सदाचारी हैं ॥
करते सर्वकार्य आश्रम के तथा स्वकीय,
अतिवर्चस्वी कौपीन-मात्र धारी हैं ॥
जीवन सरल, सादे शुद्ध-भोजन तथा,
जिनके अति पवित्र-चरित्र अविकारी हैं ॥
कर्म-व्रत-धारी देश-जाति के आभारी वीर,
पर-उपकारी प्रभु-प्रेम के पुजारी हैं ॥ ७ ॥

चार संस्थाएं मुख्य जिसमें संस्थापित हैं,
कन्या, गो, दलित, विधवा, नाम से प्रथित हैं ॥
स्वीय स्वीय उन्नति में अपूर्व अद्वितीय जो,
स्वदेश की सेवा में संलग्न अमित हैं ॥
प्रेम से स्वतन्त्रता से सम्मान-सहित पाते,
स्व-परोपकारिणी जहां शिक्षा अमित है ॥
देखे विधवाओं के सराहनीय सच्चरित्र,
जहां गो-वृन्द भी हृष्ट पुष्ट अतुलित हैं ॥

अवतार सम्प्रदाय और श्रीरामकृष्ण

[ले० श्री स्वामी मेधेश्वरानन्द जी]

भगवान् श्रीरामकृष्ण देव कहा करते थे कि "बादशाही जमाने का रुपया नवाबी जमाने में नहीं चलता।" इसका मतलब यह है कि धर्म यानी सत्य का सदैव एक रूप होने पर भी देश, काल और पात्र के भेद के अनुसार उसके बाह्यिक आचरण का भेद होना ही है। इसी लिये विभिन्न युग में श्रीभगवान् आचार्य रूप से प्रगट हो कर नये ढंग से धर्म मत चलाया करते हैं। किन्तु युगाचार्यगण जो मत चलाते हैं उसे वे स्वयं अपने जीवन में पालन करके, उसी भाव के साधन द्वारा मनुष्य जीवन के गन्तव्य स्थल मोक्ष पर पहुंच कर उसे स्वयं दिखाते हैं कि यह रास्ता मोक्ष पर जाने वाला है। वे मनुष्यों से कहते हैं कि "हे

मनुष्यो ! मैं गन्तव्य-स्थल तक पहुंच चुका। यदि तुम लोग मन और वाणी को एक करके मेरे बनाये हुये रास्ते पर चलोगे तो तुम भी उस मोक्ष को पा कर अनन्त शान्ति के अधिकारी बन सकोगे।"

बांगाल में एक कहावत है कि "आपनि आचरि धर्म अपरे शिखाय।" अर्थात् हम स्वयं जो धर्म पालन करते हैं, उसे ही दूसरों को सिखा सकते हैं। नहीं तो खुद कुछ भी न करके चुपचाप बैठ कर उपदेश देने मात्र से ही कोई किसी की एक भी बात नहीं मान सकता। मनुष्य फल देख कर आकृष्ट होता है। यदि हमारे पास देने लायक कुछ हो तो लेने वाले बहुत मिलेंगे। खिले हुये फूलों पर शहद की मक्खियां खुद ही आजाती हैं उस को बुलाने के लिये फूलों को उनके पास जाना नहीं पड़ता। इसी लिये बड़े बड़े आचार्य अपने साधन के जोर से गन्तव्य स्थल पर पहुंच कर पूचार करते हैं। और वे अपने नूतन भावों से समस्त युगचक्र को बदल देते हैं। लाखों नरनारी उनकी भावरूपी मन्दाकिनी में अवगाहन करके कृतकृतार्थ हो जाते हैं।

आचार्य दो श्रेणी के होते हैं। पहिली श्रेणी के आचार्य युगाचार्य यानी अवतारी पुरुष कहलाते हैं। जो कि देश, काल और पात्रानुसार नये ढंग पर धर्म को चलाते हैं। जो स्वयं भावघन-मूर्ति हो कर अपनी भावमय तरंगों से सारे जगत् को प्लावित कर सकते हैं। उनकी अमृतमयी वाणी से मनुष्य मात्र ही अनुप्राणित हो जाता है। उनकी शक्ति के सामने बड़े से बड़े मनुष्य भी शिर झुकाते हैं। दूसरे होते हैं सिद्ध महापुरुष। जो कि साधन बल से मुक्त हो कर दूसरोंको भी मुक्ति का रास्ता बतला सकते हैं। परन्तु वे कोई नया धर्म मत नहीं चला सकते। उनमें इतनी शक्ति होती भी नहीं कि जिससे वे स्पर्श या दृष्टि मात्र ही से दूसरों में धर्म संचार कर सकते हैं। परन्तु अवतारी पुरुष इस दुनियां में नया धर्म मत चलाने ही के लिये आते हैं। वे दृष्टि या स्पर्श मात्र से ही दूसरों में धर्म संचार सकते हैं। भगवान् श्रीरामचन्द्र श्रीकृष्ण, बुद्ध, शंकर, ईशा, श्री चैतन्य प्रभृति के जीवन की ओर ध्यान देने से हमें यह बात स्वयं ही विदित हो जायगी कि इन सभी युगाचार्यों ने अपनी दिव्य शक्ति से कितने दुरन्त पापियों को भी महात्मा की पदवी पर पहुंचा दिया। अवतारी पुरुष जिस उद्देश्य साधन के लिये अवतीर्ण होते हैं, उसका उनमें बचपन से ही प्रकाश देख पड़ता है। भगवान् श्रीरामचन्द्र एवं श्रीकृष्ण की बाल्य लीलायें कैसी अमानुषिक हैं। भगवान् बुद्ध बचपन से ही कैसे करुणहृदय और ध्यान परायण थे। बाल्यकाल से ही भगवान् शंकर में असाधारण मेधा, विचार बुद्धि, और निस्पृहता थी बालक ईशाने गुरुभाव से अनुप्राणित हो कर जेरुजालेम के मन्दिर में धर्म विगर्हित कार्य करने वाले पुरोहितों को किस तरह से डांटा था! बाल्यावस्था में ही भगवान् श्रीचैतन्य भाव में तन्मय हो जाते थे। इससे यह सिद्ध होता है कि अवतारी पुरुषों को साधन द्वारा किसी भाव को ग्रहण नहीं करना पड़ता। वे भाव के मानो समुद्र ही होते हैं। तो भी लोक कल्याणार्थ अवतारी पुरुष भी पूरी तौर से साधन भजन करते हैं। मनुष्य शरीर धारण करने के कारण उनमें मनुष्योचित दुर्बलतायें देख पड़ती हैं और मनुष्य की तरह नाना बाधा विघ्न रूपी समुद्र को तैर कर उनको गन्तव्य स्थल पर पहुंचना पड़ता है। यदि ऐसा न हो तो जन साधारण उनके भावों को ग्रहण नहीं कर सकता। अतः उनके जीवन से

हम कैसे लाभवान् हो सकते हैं ? परम दयालु श्रीभगवान् हमें शिक्षा देने ही के लिये अनन्त करुणा परवश हो कर मनुष्य रूप से हमारे बीच में अवतीर्ण होते हैं। हम उनके दर्शन, स्पर्श और अमृतमयी वाणी से अनुप्राणित हो कर सांसारिक कुटिल भावों को भूल कर सच्चे धर्म भाव से आकर्षित होते हुये आध्यात्मिक क्षेत्र के चरम शिखर पर पहुँच कर परम पुरुषार्थ लाभ करते हैं।

प्रत्येक अवतारी पुरुष के साथ कतिपय अधिकारी पुरुष अवतीर्ण होते हैं। वे नित्यमुक्त कहलाते हैं। किसी विशेष उद्देश्य को पूरा करने के लिये वे मनुष्य शरीर धारण करते हैं। परन्तु उनमें योगैश्वर्य सदैव प्रगट रहता है। वेदान्त सूत्र के तृतीय अध्याय के तृतीय पाद में भगवान् शंकराचार्य ने इन के विषय में जिक्र किया है। अवतारी पुरुष के लीला संवरण कर लेने के पश्चात् ये अधिकारी पुरुष उनके भावों को जन साधारण में प्रचार किया करते हैं। और लोककल्याणार्थ उनके शिष्य प्रशिष्यों को संघबद्ध करके एक सम्प्रदाय की सृष्टि करते हैं। कुछ समय तक वह सम्प्रदाय अपने आदर्श पर अटल रह कर मनुष्य समाज को ठीक रास्ते पर चलाता है। परन्तु प्राकृतिक नियमवश मनुष्य का चित्त ज्यों ज्यों बदलता जाता है त्यों त्यों उस सम्प्रदाय की अध्यात्मिकता का भी ह्रास होता जाता है। इस तरह से धीरे धीरे उस संम्प्रदाय में बाह्यिक आचरणों के सिवाय और कुछ भी नहीं रह जाता। तब धर्म की ग्लानि का समय आता है और नया युगचक्र चलाने के लिये भगवान् फिर अवतीर्ण होते हैं। यही है अवतार लीला का तात्पर्य।

इस लेख में मैं यह दिखाने का प्रयत्न करता हूँ कि इस नव युग के कर्णधार भगवान् श्रीरामकृष्ण हैं। परन्तु इस महापुरुष के विषय में कुछ लिखने या बोलने में बड़ी आशंका होती है। क्योंकि यह विशाल आत्मा इतनी असम्प्रदायिक थी कि मन और वाणी से इनको समझना और समझाना बड़ा ही कठिन है। इनके विषय में कुछ बोलने में सर्वदा मेरी यही आशंका होती है कि कहीं इनको मैं साम्प्रदायिक दोष से दुष्ट न कर बैठूं। इसीलिये मैंने प्रारम्भ में ही अवतार और सम्प्रदाय के विषय में थोड़ा बहुत जिक्र कर दिया है। वहां मैंने यह दिखाने की कोशिश की कि हरेक युग के आदर्श के अनुसार धर्म को नये ढंग पर चलाने के लिये श्रीभगवान् युगाचार्य के रूप में प्रकट होते हैं और वे अपनी अलौकिक शक्ति से मनुष्यों के हृदय पर अधिकार जमाकर उनको आध्यात्मिक सत्य के रास्ते पर चलाया करते हैं। इसीलिये हरेक अवतारी महापुरुष के साथ स्वभावतः एक नयी संप्रदाय की सृष्टि होती है। वह सम्प्रदाय उस अवतारी महापुरुष के उद्देश्यों के ही आधार पर जन साधारण में अपना काम जाहिर करती है। स्वभावतः जो प्रकट होता है न तो हम उसे रोक ही सकते हैं और न यही कह सकते हैं कि समाज में उसकी स्थिति व्यर्थ तथा हानिकर है। अतः उसे तोड़ डालना चाहिये। कारण कि ऐसा करने से समाज में विशृंखला फैल जाती है। अतः पहिले हरेक संप्रदाय का उद्देश्य समझना चाहिये कि उससे भूत काल में हमारे समाज का प्रभूत कल्याण हो चुका है। इस बात को हृदयंगम करते हुये मैत्री और पूर्ण सहानुभुति के साथ विभिन्न सम्प्रदाय से बर्ताव करना होगा। संस्कार करने के मायने किसी को नष्ट कर डालना नहीं होता किन्तु उनको नष्ट होने से बचाना ही संस्कार कहलाता

है। यदि हम किसी को मदद देना चाहते हैं तो हमारा कर्त्तव्य है कि पहिले हम प्रेम और सहानुभूति से उनके हृदय पर अधिकार जमावें। नहीं तो वह हमें विश्वास नहीं करेगा विश्वास के बिना वह हमारी वाणी को किस तरह से ग्रहण कर सकेगा? अतः लड़ाई भिड़ाई को छोड़ कर यदि हम दूसरों के उद्देश्य को समझ बूझकर प्रेम और सहानुभुति से उनको अपनाने का प्रयत्न करें तो हम स्वदेश और समाज का बहुत कल्याण कर सकते हैं। यही है श्रीरामकृष्ण के जीवन का मूल सूत्र। पूर्व अवतारी महापुरुषोंने किसी एक विशेष भाव का ही आश्रय ग्रहण करके उसीके सहारे श्रीभगवान् तक पहुंच कर उसी भाव का साधारण में प्रचार किया। अथवा किसी ने किसी एक ही मार्ग से तत्व को लाभ करके दूसरे अन्य मार्गों को भी मोक्ष पर पहुंचने के अलग अलग रास्ते बतलाये। परन्तु श्रीरामकृष्ण देव ने हमारे हिन्दुओं के प्रधान प्रधान साधन मार्गों से साधन करके विभिन्न रूप में सत्य स्वरूप एक ही भगवान् को लाभ किया। जितने आचार्यों के विषय में हम जानते हैं उनमें से कोई द्वैत मार्ग के, कोई विशिष्टाद्वैत मार्ग के एवं कोई अद्वैत मार्ग के प्रचारक थे, किसी के जीवन में इतना देख पड़ता है कि वे किसी खास मार्ग का प्रचारक होने पर भी दूसरे मार्गों से भी सहानुभूति रखते थे परन्तु भगवान श्रीरामकृष्ण हमेशा कहा करते थे कि "मत पथ।" यानी जितने मत प्रचारित हैं वे सब के सब एक ही भगवान् में पहुंचने के अलग अलग रास्ते हैं। भावमय अनन्त भगवान् विभिन्न रूप में भक्तों पर कृपा करते हैं। वे सर्व-शक्तिमान् हैं। उनकी शक्ति और ऐश्वर्य की इयत्ता कौन कर सकता है? हमें चाहिये कि किसी एक रास्ते को पकड़ कर उससे चलकर भगवान् तक जा पहुंचें। भगवान् को लाभ करने से हमें परम पुरुषार्थ मिल जायगा। सांसारिक दुःखों की आत्यन्तिक निवृत्ति हो जायगी। हम जन्म मृत्यु के परे पहुंच कर अमृत स्वरूप बन जायेंगे। परन्तु खेद की बात यह है कि तत्व लाभ करने की चेष्टा हम में अब बहुत कम है हमारा धर्म लाभ केवल मार्गों के विचार और मतों के दोष ढूंढ़ निकालने तक ही में रह गया। तत्त्व लाभ की पिपासा हम में बहुत कम हो गई। दूसरों से लड़ने झगड़ने में हम तत्पर हो गये। संशय-बुद्धि और विपरीत-बुद्धि ने हमें पकड़ लिया है। नास्तिकता और जड़वाद ने हमारी नस नस में घुस कर हमारी बुद्धि को इतनी मलिन कर दिया है कि धर्म और धर्माचारियों के नाम से ही हम नाक भौं सिकोड़ने लगते हैं। साधु महात्माओं को देखते ही हम हंसी दिल्लगी मचाने लगते हैं। इस महा-पतन के समय में, इस नव-युग के सन्धिस्थल में श्रीभगवान् इतनी आध्यात्मिक शक्ति और योगैश्वर्य लेकर हमारे बीच में अवतीर्ण हुये कि जिनकी ज्ञान-ज्योति से हमारी तमाम अशान्ति का मूल कारण जड़वादी पाश्चात्य सभ्यता की आखें भी चकाचौंध हो गईं। हे मेरे भाईयो! तनिक याद करो शिकागो की धर्म महासभा में स्वामी विवेकानन्द के भीतर से जो शक्ति का खेल हुआ था उसका मूल प्रस्रवण था हमारा सनातन धर्म और इस सनातन धर्म का मूर्त विग्रह थे भगवान् श्रीरामकृष्ण देव!

श्रीरामकृष्ण की साधना का काल बारह वर्ष का था। परन्तु इतने अल्प समय में ही आपने जितनी प्रणालियों और भावों का साधन किया वह भी अभूत पूर्व है। तन्त्र शास्त्रोक्त किसी एक प्रणाली

से साधन करने से ही श्रीभगवान् को जगज्जननी महाशक्ति के रूप में हम उपलब्ध कर सकते हैं। परन्तु भगवान् के एक वीरभाव के सिवाय तन्त्रों में जितने प्रकार की साधन प्रणाली हैं उन की सभी प्रणालियों से साधन किया और उन में सिद्ध हुये। वीरभाव का साधक आने को शिशुरूप में और महाशक्ति को अपनी शक्ति रूप में भावना करता है। इसी लिये श्रीरामकृष्ण कहते थे कि "मेरा शुद्ध सन्तान भाव है। वीरभाव अशुद्ध है और इस रास्ते से चलने से साधक के पतन की आशंका है।" वैष्णव शास्त्र में पांच प्रकार के भावों के साधनों का उपदेश है।

अपूर्ण

ईश्वर के सच्चे भक्त बनो।

(ले० स्वामी आत्मानन्द जी)

ईश्वर के भक्त कहा कर कितने ही श्रीमंतों की खुशामद किया करते हैं, बहुत से अड़ंगा लगाया करते हैं, बहुत कंगाल के समान बन कर जीवनभर भीख ही मांगा करते हैं, बहुत से कुत्ता व बंदर पाल कर उसके द्वारा अपना पेट पालते हैं, बहुत से बिना वैदक शास्त्र पढ़ हुए कुछ जड़ी बूटी रख कर दवा का दुकान खोल कर बैठ जाते हैं, बहुत से जन्तर मन्तर का ढोंग करते हैं, कुछ बिना कारण गाली देने में ही अपना बड़प्पन समझते हैं, कुछ मनुष्य जाति से अलग हो जाने में ही अपनी पवित्रता समझते हैं, बहुत से अनेक प्रकार के भ्रष्टाचार में ही अपना धर्म समझते हैं, कुछ अपनी इच्छानुसार स्वछन्दता पूर्वक रहने में ही बड़ाई समझते हैं, कुछ दूसरे संप्रदाय वालों से द्वेष करने तथा उनके साथ लड़ाई करने में ही अपना जीवन व्यतीत कर देते हैं, बहुत से अन्त तक तुच्छ बातों में ही पड़े रह जाते हैं, कुछ बिलकुल निरुपयोगी हो जाने में ही अपनी महत्ता समझते हैं, बहुत से चेला मूंडने में ही बहादुरी मानते हैं, बहुत से जटा, भस्म, माला, रंगीन कपड़े आदि बाहरी आडम्बर में ही अपनी सार्थकता समझते हैं, बहुत से मूर्खों से पूजा कराने में ही अपने को महान् समझते हैं, और भी ऐसे ही बहुत से ढोंग रचते हैं। ऐसा करने से वे धर्म के अगुआ गिने जाते हैं, पूज्य समझे जाते हैं, संत कहे जाते हैं, महात्मा कहे जाते हैं और बहुत से लोग उनका कहना मानते हैं, क्योंकि वे ईश्वर के भक्त समझे जाते हैं। यह सब हाल देख कर अच्छे पुरुषों को ग्लानि होती है यदि कोई सभ्य पुरुष श्रद्धा कर उनके पास जावें भी तो उनमें कोई सभ्यता न देख कर उलटे पांव लौट आते हैं और उनकी भक्तों पर उलटी अश्रद्धा हो जाती है, क्योंकि शास्त्रों के कहे अनुसार कोई भी गुण उनमें नहीं देखते हैं।

सर्व शक्तिमान् महान् प्रभु के भक्त प्रभु के समान ही दैवी गुण वाले होते हैं, क्योंकि शुद्ध अंतःकरण से मनुष्य जैसी भावना करता है वैसा ही उसे फल भी मिलता है और जिसका ध्यान रखता है वैसा ही वह स्वयं भी हो जाता है। ऐसा प्राकृतिक नियम होने से तथा सच्चे भक्तों का सर्वस्व अपने प्रभु में ही होने से प्रभु का थोड़ा बहुत अंश उनमें आता जाता है, इससे संसार के साधारण व्यवहारिक मनुष्यों की अपेक्षा हृदय से लगे हुए भक्तों के आचार विचार बहुत ही उच्च दशा को पहुंचे होते हैं क्योंकि वे

जिसका सेवन करते हैं, ध्यान धरते हैं, गुण गान करते हैं, ज्ञान प्राप्त करते हैं, जिसकी भावना रखते हैं और अपना सर्वस्व अर्पण करके जिसकी इच्छा में अपनी इच्छा मिला देते हैं वह अनन्त ब्रह्मांड का नाथ, सर्व शक्तिमान्, परम कृपालु, सच्चिदानन्द परमात्मा सब से बड़ा, भला, सुन्दर, राजाओं का राजा, देवों का भी देव, जीवों का जीवन देने वाला, सूर्य को प्रकाश देने वाला अग्नि को गर्मी देने वाला, ग्रहों को बनाने वाला, समुद्र पर आज्ञा चलाने वाला, वर्षा बरसाने वाला तथा काल का भी काल है, सुख का भी सुख आनन्द का भी आनन्द आदि अन्त रहित तथा मोक्ष का दाता है। उसमें क्या त्रास नहीं है जिसे न पाकर उसके सच्चे भक्त दूसरी वस्तु की इच्छा रखें।

अब विचार करो कि ऐसे भक्त जो ऐसे महा आकर्षण में खिंच गये हों, महा आनन्द में लीन होगये हों तथा ऐसी महाशक्ति के आगे अपना अहम्त्व भूल गये हों, वे किसी बात के लिये कैसे दुःखी हो सकते हैं? और उनके हृदय में किसी भी प्रकार की इच्छा कैसे रह सकती है? क्योंकि वे तो अपना सर्वस्व ईश्वर को समर्पण कर ईश्वरमय हो जाते हैं, इससे उनके हृदय में ईश्वरीय ज्ञान का सूर्य चमकता रहता है और उनके मन में ईश्वरीय स्नेह का पूर्ण-चन्द्र प्रकाशमान् रहता है जिससे उनके हृदय में से जगत् पर उजाला पड़ा करता है, उनके मन में शांति बहा करती है। उनकी वाणी में से सत्शास्त्र के महा-सिद्धांत निकला करते हैं, उनके चहरे पर आत्मिक तेज छाया रहता है और उनकी दृष्टि से अमृत वर्षा करता है। इतना ही नहीं जहां जहां उनकी जरूरत पड़ती है वहां वहां कुछ न कुछ कल्याण ही होता जाता है। जहां उनके चरण पड़ते हैं वहां चिरकाल के लिये कुछ असर फैल जाता है, जहां वे ठहरते हैं वहां सत्पुरुषों को स्वभाविक ही उनके दर्शन का उत्साह होता है और जिन लोगों का उनके साथ संपर्क हो जाता है उन्हें कुछ नया ही रंग लग जाता है। ऐसी स्थिति जिसमें मग्न हो ऐसे ही महान् पुरुष को शास्त्र भक्त व महात्मा कहते हैं। वही सच्चा संत है, वही अपना कल्याण करने वाला है और वही जगत् के जीवों की सहायता करने वाला है। इससे भाइयो! याद रखो कि सच्चे भक्त बड़े ही निस्पृह, परोपकारी, उदार, सहनशील, जगत् के जीवों पर प्रेम रखने वाले, स्वार्थ त्यागी, मनुष्य जाति की उन्नति करने के लिये शुद्ध अन्तःकरण से सहायता करने वाले, धर्म के स्वयं रूप, जगत् के लिये आदर्श रूप तथा और सभी बातों के लिये हृदय से तृप्त होते हैं। इससे भाइयो! भूल में पड़े न रह कर ऐसा बनने का प्रयत्न करो और जो ऐसे सच्चे भक्त हैं उनकी प्रभुप्रीत्यर्थ यथा शक्ति सहायता करो।

शुद्ध संकल्प से विजय।

(ले० श्री विश्वामित्र जी ब्रह्मचारी)

प्रिय पाठक वृन्द! मनुष्य के मनका धर्म कल्पना करना है। प्रकृति में मनुष्य का मन तर्क, वितर्क, कुतर्क, के बिना रह नहीं सकता, यदि मनुष्य का मन संकल्प विकल्प की कल्पना करता ही रहेगा, तो फिर उसको ठीक प्रकार की कल्पना करने की शिक्षा क्यों न दी जावे? ताकि वह ठीक मार्गपर चलकर अपने लक्ष की तरफ बढ़ सके यह सुशिक्षा से होगा सुशिक्षा के

अभाव में मन इस आत्मा को नीचे गिरावेगा। सुशिक्षा से ही मन उत्तम मार्ग पर चलता हुआ उत्तम संकल्प करके अपनी अवस्था उच्चावना सकता है।

मनुष्य की उन्नति की कोई अवधि नहीं है मनुष्य का अभ्युदय मर्यादा से परिमित नहीं है। परन्तु जब वह अपने ही कुतर्कों से परिमित होता है तब मनुष्य के सामने उदासीनता उत्पन्न होती है। इसलिये ऋषि मुनियों ने सिद्धान्त बनाया है कि "मन एव मनुष्याणां कारणं बंधमोक्षयोः" मनुष्यों का मन ही उनके स्वातंत्र्य और पारतंत्र्य का कारण है उत्तम सुसंस्कारों से शुद्ध मन धारण करने वाले मनुष्य स्वातंत्र्य सुख अर्थात् मुक्ति आनन्द प्राप्त करते हैं और जिन का मन गुलामी के कुत्सित विचारों से परिपूर्ण होता है, वे सदा परतंत्रता के विविध बंधनों में फंस कर जीते और मरते रहते हैं। मनकी शक्ति इस प्रकार से विलक्षण है। मन ही कल्पतरु है कल्पनाओं का तरु अर्थात् वृक्ष मन ही है। जैसी कल्पना आप करेंगे वैसे ही आप बन जावेंगे आप के मन की इतनी विलक्षण शक्ति है। इसीलिये आपको सावधान रहना चाहिये। अन्यथा जैसी चाहे वैसी कल्पना मन में आ जावेगी और आप का जीवन का परिणाम बड़ा भयानक हो जायगा इसलिये वेदने कहा है

"सुषारथिरश्वानिव यन्मनुष्यान्नेनीयतेऽभिशुभिर्वाजिन इव।
हृत्प्रतिष्ठं यदजिरं जविष्ठं तन्मे मनः शिव संकल्पमस्तु॥"

"जिस प्रकार उत्तम सारथी रथ के घोड़ों को लगामों के द्वारा उत्तम मार्ग पर ही ले जाता है, उसी प्रकार जो मन मनुष्यों की इंद्रियों को चलाता है वह हृदय निवासी उत्साही और वेगवान मेरा मन सदा उत्तम संकल्प करने वाला होवे।" वेद का यह उत्तम उपदेश है। परन्तु क्या इस प्रकार वैदिकधर्मी चल रहे हैं? जो मनुष्य इस उपदेश के अनुसार अपने मन की शक्ति को जानेंगे और उस विलक्षण शक्ति को अपने स्वाधीन रख कर योग्य कर्म में ही उस शक्ति का उपयोग करेंगे वे लोग ही इस लोक में अभ्युदय और परलोक का निःश्रेयस निःसंदेह प्राप्त कर सकेंगे। वैदिक धर्म का यह प्रताप है, कि यह धर्म जहां रहेगा, वहां अभ्युदय और निःश्रेयस सदा प्रकाशित होते रहेंगे वैदिक धर्म के होने का तात्पर्य आचरण करने से है न कि केवल विचार और उच्चारण से। केवल विचार उच्चारण और लेखों में वैदिक धर्म को रखने वाले कभी उन्नत नहीं हो सकते। यहां कटि बद्ध होकर सदा शुद्ध आचरण का ही महात्म्य है उक्त वेद मंत्र का दिव्य उपदेश आचार प्रधान ही है। इसलिये पाठकों से प्रार्थना है कि जो कुछ वे वेद मंत्रों में पढ़ें शीघ्र ही आचरण में लाने का यत्न करें। एक समय हमारे हां तोते के समान कंठ करने वाले वेद भक्त थे अब अर्थ का डंका बजाने वाले वेद भक्त हैं। आचरण की दृष्टि दोनों के पास शून्य ही है। 'मे मनः शिवसंकल्प मस्तु।' इस मंत्र का केवल पाठ करने वाले और केवल अर्थ जानने वाले दोनों तब तक उन्नत नहीं होंगे जब तक वे अपना मन शुभसंकल्पमय नहीं करेंगे। एक कुली था जिसके सिर पर खांड की बोरी थी परन्तु उसको बोरी के अंदर क्या वस्तु है इस का पता न था। उस के पीछे से दूसरा कुली आया उस को पता था कि अपने सिर पर की बोरी में मिश्री है, परन्तु वह बोरी का स्वामी न होने के कारण उसको खा नहीं सकता था। मिश्री का आस्वादन लेने की दृष्टि से दोनों का अधिकार भार सहने का ही है। इसी प्रकार वेद को केवल कंठ करने वाले और केवल घमंड के साथ अर्थों का शास्त्रार्थ करने वाले दोनों नीचे ही

रहेंगे, परन्तु जो वेद के उच्च उपदेश के समान अपना आचारण बनावेगा वही उच्च पदवी पा सकता है। इस लिये वेद का पढना, पढना सुनना सुनाना, तथा वेद के उपदेश के अनुसार स्वयं आचरण करना उच्च श्रेणी के मनुष्यों का परम धर्म है। इसलिये उक्त मंत्र का विचार मन में सदा निहित रखिए। शरीर रूपी इस उत्तम रथ में जीवात्मा बैठा है और उस रथ को दस घोड़े खींचते हैं मन, इस रथ में सारथी है, और आत्मा प्रवासी है। मालिक-स्वामी-धनी-इंद्र जीवात्मा ही है। जहां वास्तव में उसको जाना है उसी जाने वाले मार्ग पर से इस रथ को गति होनी चाहिये। यदि मन रूपी सारथी शराब पीकर उन्मत्त होगा अथवा दस घोड़े अपने योग्य मार्ग को छोड़ कर जिधर चाहें उधर भटकने लगेंगे तो इस शरीर की और प्रवासी जीवात्मा की कैसी अवस्था होगी आप ही सोच सकते हैं। और पश्चात् आप अपनी अवस्था को सोचिए। क्या आप अपने मन इंद्रिय और शरीर के सच्चे स्वामी बने हैं? क्या आपके हित के मार्गपर से आप का मन सब इंद्रियों को चलाता है? क्या क्रोध कामादि घातक पत्थरों से मुक्त भयानक स्थानों में आप अपने मन इंद्रिय और शरीर के सच्चे स्वामी बने हैं? क्या आपके हित के मार्गपर से आप का मन सब इंद्रियों को चलाता है? क्या क्रोध कामादि घातक पत्थरों से से मुक्त भयानक स्थानों में आप का रथ नहीं जा रहा है? क्या सब मनो विकारों पर आप का प्रभुत्व स्थापित हुआ है? क्या आप का मन कभी कुविचारों के गड्ढों में मूर्च्छित होकर पड़ता नहीं? क्या आपका मन सदा शुभ कल्पनाओं में और शुभ कर्मों में ही रमता है? यदि नहीं तो आपको उचित है कि वैदिक धर्म के शुभ नियमों के अनुकूल चल कर आप मन के उत्तम स्वामी बन जाइए। दूसरे व्यवहार आप के काम नहीं आवेंगे जो इस बात को छोड़ कर दूसरे ही कामों में लगता है वही दस्यु होता है देखिए वेद कहता है-

अकर्मा दस्युरभि नो अमंतुरन्य व्रतो अमानुषः॥"

मनुष्यों में दस्यु वह होता है कि जो पुरुषार्थ-पूर्वक यत्न नहीं करता, सुविचार नहीं करता, दूसरे ही कार्य करते रहता है और उन्नति के कार्य को छोड़ देता है और मनुष्यत्व के अयोग्य कुत्सित कर्म करता रहता है ये दस्यु के लक्षण हैं। इनसे आलसी, अविचारी कुकर्मी हो जाते हैं। हर एक को सोचना चाहिये कि अपने द्वारा किस श्रेणी के कर्म हो रहे हैं? आप जानते हैं कि सुख बाहर से प्राप्त नहीं हो सकता आप की मानसिक अवस्था पर ही सुख अवलंबित है, आप सुखी हैं या दुखी हैं इस का विचार कीजिए। आप दुःखी होने पर दूसरों को बुरा भला कहने के लिये प्रवृत्ति हो रही है, यही बड़ी भारी गलती है यही प्रवृत्ति बहुत बुरी है। अपने मन की अवस्था के कारण ही आप को दुःख हो रहा है। देखिये सोचिए और अपने मन की परीक्षा कीजिए वेद कहता है कि-"मनको शुभ विचारमय दक्षता से युक्त और पुरुषार्थ के विचारों से उत्साही बनाइए फिर आप के पास दुःख कहां रहेगा। इसलिये कहा है कि-

मनो यज्ञेन कल्पताम्॥

मन सत्कर्म में लगाइए। यही एक उपाय है, दूसरा कोई उपाय नहीं है। इस को छोड़ कर यदि आप अन्य कुव्यवहारों में आपना कदम बढ़ावेंगे तो आप अन्य व्रती होने के कारण दस्यु बनेंगे। अपना समय व्यर्थ नहीं खोना चाहिये। अश्लील उपन्यास निंदा से भरे हुये अखबार व्यर्थ गपोड़ों के स्तव, निरर्थक गप्पाष्टिक आदि में अपना समय

न गवाइये। गया हुआ समय फिर नहीं मिलेगा जो साथ समय है उसका अत्यंत योग्य उपयोग कीजिये। वेद ने कहा है कि।

आयुर्यज्ञेन कल्पतां प्राणो यज्ञेन कल्पतां
चक्षुर्यज्ञेन कल्पतां श्रोत्रं यज्ञेन कल्पतां
वाग् यज्ञेन कल्पतां मनो यज्ञेन कल्पतां
आत्मा यज्ञेन कल्पतां ब्रह्मा यज्ञेन कल्पतां
ज्योति र्यज्ञेन कल्पतां स्वर्यं यज्ञेन कल्पताम्

हे लोगो! आप को उचित है कि आप अपनी आयु, प्राण, चक्षु. श्रोत्र, वाणी, मन, आत्मा, ज्ञान, तेज स्वत्व आदि जो कुछ अपनी शक्ति है वह सब सत्कर्म के लिए अर्पण किजिए। क्योंकि सत्कर्म के बिना जो आयु चली जाती है वह व्यर्थ है। समय पर योग्य सत्कार्य करने का अभ्यास कीजिए जिससे आप थोड़े समय में बहुत सत्कर्म करेंगे। यदि आप सत्कर्म करने में देरी करेंगे तो निश्चय जानिए कि उन्नति होने में भी उतनी ही देरी लगेगी।

अपने ऊपर आत्म-विश्वास रखिए। बोलने चालने में अपना विश्वास और अपनी अचल श्रद्धा रखिये अपने विषय में जिस को संशय है वह अधोगति में जाता है। अपनी शक्ति और अपनी दक्षता पर निश्चय पूर्वक पूर्ण विश्वास रखिये वेदने कहा है कि-

स्वं महिमान मायजतां।—यजु०

अपने प्रभाव का गौरव अपने मन में रखिए इससे आत्मा बढ़ता है और अपनी शक्ति बढ़ती है। अपने जीवन का उद्देश बनाकर सत्पुरुषों, सद्गुरुओं, महात्माओं और उपकारी जनोंकी खोज कीजिए। उनके सत्संग से मन को ठीक मार्ग पर चलाने की विधी सुगम हो जावेगी। उनका सहारा लेकर उत्साह पूर्वक पुरुषार्थ में लग जाइए। मन को ठीक मार्ग पर डाल दीजिए फिर यह आप को साधारण मनुष्य से महान् पुरुष बना देगा। समस्त जगत् के पदार्थ, ऐश्वर्य और भोग सब तुम्हारे ही होंगे। भक्ति मुक्ति तुम्हारी दासी होगी और तुम अनन्त आनन्द के स्वामी होजाओगे।

गीता-उपदेश

(लेखक—श्रीमदन गोपाल जी सिंहल)

दुइ सेना के बीच पार्थ का जब रथ आया।
युद्ध हेतु लख के स्वजनों को चित पछताया॥
'श्याम! खड़े हैं सदे बन्धु गुरु चाचा ताया।
करने को कुल घात नहीं यदुनन्दन आया॥
शस्त्र न मेरे चल सकें इन स्वजनों के निकट में।'
यों कह डारा गाण्डिव भारत 'भारत समर में'॥
लगे कहन घन श्याम 'अरे अर्जुन! क्या करता।
क्षत्री के कर्तव्य न तू हिय में क्यों धरता?
मारेगा तू किसे कोई मारे ना मरता।
प्राण वस्त्र की भांति सदा यह देह बदलता॥
मेरे द्वारा शत्रु तव पहुंचे मृत्यु उदर में।
लेले यश तू विजय का अर्जुन 'भारत समर में॥
दे ऐसा उपदेश उसे निज रूप दिखाया।
जिसे देख लख परी कृष्ण की उसको माया॥
'क्या डर है जब साथ साथ' ये हृदय समाया।
गिरा चरण में कृष्णचन्द्र ने उसे उठाया॥
फिर तो गाण्डिव हाथ ले तरकश बांधा कमर में।
और लगा युद्ध खेलने पुनः 'भारत समर में।'

सुखमय जीवन

सुखवाद ।

गतांक से आगे

(ले० श्री सनत्कुमार जी निर्मल)

विश्व में यों दुःख की व्यापकता का व्याख्यान सुन कर सुखवादि यों कहते हैं कि "क्या ग़ज़ब कर रहे हो ! अगर दुनियां में यों दर्द को दाद दी तो क़यामत बरपा हो जायगी ! क़हर कह कहा लगा कर टूट पड़ेगा । दारुण दुःख रौद्र रूप धारण कर विश्व-विध्वंसिनी अकर्मण्यतावाग्नि में इस कर्मक्षेत्र को तपा डालेगा । विचारिये विवेचना कीजिये जब विकराल काल के गाल में किसी अबला के लाल विलीन हो जाएँ और दुखार्दिता उस आर्त निनाद को करे जिसे श्रवण कर वज्र हृदय भी खण्ड २ हो जावें ।

उनका मुख चन्द्र निहार सदा अपने मन में हर्षाती थी ।
एक आंचरल छटा छबीली सी आशा की लता बढ़ाती थी ॥
आंखों से ओझल आज हुए लोरी कल जिन्हें सुनाती थी ।
ओ भूमि ! कहां वह लाल गए जिनके पय पान कराती थी ॥

ऐसी स्थिता में क्या आप के पास दो चार शब्द नहीं जो इस दुःखी चिन्ता को आशान्विता कर सकें । ओ ! दुःख के दुलारे होश कर । जब रति अपने प्रियतम से पूछती है कि "अपि जीवित नाथ ! क्या आप जीवित हैं ? लेखना कांप उठती है, जिसे तो क्या लिखें ? उस शृंगार रस रसिक कालिदास की लेखनी भी सहसा करुणार्णव में निमग्न हो जाती है और लिखती है:-

दृष्टं पुरुषाकृति क्षितौ हर कोपानल भस्म केवलम् ॥

हा ! रति के प्रश्न का उत्तर पृथिवी पर पड़ी रहकोपानल से भस्म हुई पुरुषाकृति क्या देती ? हां कलेजा थाम कर स्मर प्रिया का प्रलाप सुनलो:-

कृतवानसि विप्रियं न मे प्रतिकूलं न च ते मया कृतम् ।
विन कारणमेव दर्शनं विलपन्त्यै न ददासि ॥

जीवन ! आप वियुक्त होते हैं ? मैंने तो कभी आप का अनिष्ट नहीं किया फिर क्यों इस विलाप करती हुई रति को दर्शन नहीं देते ? दुःख के वशम्वदो . यदि संसार में दुःख ही दुःख है तो किस सुखाशा में रति अपने प्राणों को धारण करती है ? पर नहीं संसार में सुख है तभी तो गगन गिरा की गिरा सुन कर "हे कुमुमायुध पत्नि शीघ्र ही तुम्हें तुम्हारे प्राणाधिप की प्राप्ति होगी अपने रम्यवपु की रक्षा करो देखो उत्तम मार्त्तण्ड की प्रखर राश्मियों से पीई गई नदी ग्रीष्मान्त में फिर अथाह वारि प्रवाह से परि पूरित हो जाता है ।

भगवान् रामचन्द्र जगज्जननी जानकी के वियोग में अपने आप को भूल जाते हैं । और कहते हैं सखे ! कहो तो मैं कौन हूं ?

लक्ष्मण:-आप भगवानार्य हैं ।

रामचन्द्र:-वह कौन ?

लक्ष्मण:-राघव ।

राम:-आप कौन हैं नाथ ?

लक्ष्मण -यह क्या ? आप मुझे नाथ क्यों कहते हैं ! मैं तो आप का दास लक्ष्मण हूं !

रामचन्द्र:-इस भयानक वनमें हम क्या करते हैं !

लक्ष्मण:-देवी की खोज कर रहे हैं ।

रामचन्द्र:-कौन देवी ?

लक्ष्मण:-जनकाधिराजतनया।
रामचन्द्र:-हा !!! जानकी कहां हो ?
ऐसे समय में लक्ष्मण यदि उन्हें यह न समझाते कि:-

धैर्यं जहासि रघुनाथ कथन्विदानीं।
सुयोगमाश्रित्य विधेहि कार्यम् ॥
दुःखार्णवे वै यदि मज्जसि त्वं।
दशा तु कस्मान्नतु मादृशानाम् ॥

लक्ष्मण के इन शब्दों की यदि राघव उपेक्षा कर देते और यह धारण कर लेते कि जब जानकी मिलेगी तब भी दुःख है और न मिलेगी तब भी अतः उद्योग न करना चाहिये तो ऐसी दशा में दुःख-वादियो! वह लोक रावण जिसके विषय में माघ कवि यों कहता है:-

अशक्नुवन् सोढुम् धीर लोचनः
सहस्र रश्मे रिव यस्य दर्शनम्।
प्रविश्यहेमाद्रि गुहागृहान्तरे ॥
निवाच विन्ध्यद्विवसानि कौशिकः

"उलूक के समान अधीरलोचन इन्द्र सूर्य के समान जिसके दर्शन करने को समर्थ न होकर हेमाद्रि की गुहाओं के बीच भयभीत हुआ अपने दिन व्यतीत करता था" ऐसा तेजस्वी दशानन सुख प्रिय भगवान् रामचन्द्र ने इस दशा को पहुंचा दिया।

हर शिरसि शिरांसि या निरेजुः
शिव शिवतानि लुठन्ति गृध्र पादे।

जिस अभिमान धनी रावण के शिर कभी शिवजी के मस्तक पर शोभायमान होते थे वे शिर गीधों के पावों में लुढक रहे हैं!

इस प्रकार राम ने इसलोक रावण की सत्ता धर्म राज्य की स्थापना करदी क्यों? क्या विनष्ट कर दुःख के लिये? नहीं सुख के लिये? तब कैसे कहते हो कि संसार दुःखमय है। यह माना कि संसार में दुःख अवश्य है पर यह नहीं कि सुख है ही नहीं वरन सत्य तो यह है कि दुःख बहुत कम और सुख बहुत अधिक है। आप गर्भ कारागार को महान् दुःखागार समझ रहे हैं परन्तु विचार तो कीजिये:-

रंगदेती है हिना पत्थर पै पिस जाने के बाद।
आदमी बनता है लाखों ठोकरें खाने के बाद ॥

यही हाल कनक (सोने) का है जब तक वह कन कन हुआ अद्रिके आकर में पड़ा रहता है तब तक वह ससार में प्रतिष्ठा नहीं पा सकता। परन्तु जब वह ताप ताडन, छेदन और निघर्षण के महान् कष्टों को भोगलेता है तब वह कवि के इन शब्दों को प्राप्त होता है:-

सफल भयो तप हे कनक! कियो जो बहु दुःख पाय।
बन्यो मुकुट रघुनाथ के चढ्यो शीश पै आय ॥

ऐसे ही गर्भ के महान् दुःखों को भोग कर ही मनुष्य बनता है, अतः गर्भ के महान् दुःखों से त्रस्त होकर त्राण पाने की तृष्णा करना व्यर्थ ही है। क्यों कि अव्यक्त को व्यक्त करने वाला गर्भ ही होता है, इसी भाव को व्यक्त करते हुये राजा भोज के विषय में यों कहा है:-

सुरताय नमस्तस्मै जगदानन्द दायिने।
आनुषंगि फलं यस्य भोजराजा भवादृशः॥

याज्ञवल्क्य और शुकदेवादि योगियों के दर्शन भी तो संसार को इसी के द्वारा हुए हैं फिर इस को दुःखागार समझ, कोसना कृतघ्नता नहीं, तो क्या है? बाल्यावस्था को लीजिये वात्सल्यमयी जननी की गोद क्या कभी भुलाई जा सकती है? जाने भी दो उस नगण्य मशकदंश को याद करो उस अंगूठा चूसने के

परमानन्द को जिसके माधुर्य की उपमा इक्षु दण्ड, नहीं २ अमियमूरि भी यदि कहीं होती नहीं पासकती सच कहना जो आनन्द धूलि धूसरित होने में आया था क्या कभी उसका शतांश भी अनुपम सौन्दर्य भान्वित बहुत्तनोद्वर्तित होने में आया है ? आश्चर्य तो यह है कि जो कैतूहल कृत्रिम क्रीडनावली से क्रीड़ा करने में हुआ वह साक्षात् प्रकृत पदार्थों के उपभोग से भी नहीं हुआ। बाल्यावस्थे ! तभी तुम्हारे चले जाने पर मानव वृन्द व्यथित हुआ यों कहता है:-

चिन्ताओं से रहित अति लसित वह नित हर्षित सरसित चित;
मोह मदन मद छल विहीन शुचि सरल विचारों का वह वित;
चित्र कारा लो चित्रित करदो मेरे यौवन अञ्चल में;
मेरे भोले बालापन को उसी रेणुरञ्जित जल में

बाल्यावस्था बालकों के लिये ही आनन्दपद नहीं वरन बाल विलोकने भी दर्शकों के हृदय में एक अद्भुत हर्षालोक आलोडित कर देता है:-

हांसी बिन हेतु मांहि दीसती चतीसी कछु निकसी मनो हैपांति
ओछी कलिकान की बोलन चहतबात निकस जाय टूटी सी लागती
अनूठी मीठी बाणीतुतलान की गोद तें न प्यारो और भावे मनकोई
ठौर दौरि दौरि बैठे डांडि भूमि आंगनान की धन्य वे हैं नर नैलेते
करत गात कनयों लगाय धूरे ऐसे सुवनान की

यौवन ! क्या तुम्हारी प्रशंसा में भी हमें कुछ कहने की आवश्यकता पड़ेगी ? यार तुम तो साक्षात् सुख के सुहृद् हो कहो तो कैसे कोई तुम्हारी प्रशंसा कर सके। पर लेखनी का तो लिखने का ही कार्य है। यही कारण है कि कवियों की विश्व मोहिनी कृति न जाने कितने आप के गुण गाचुकी और अनन्त काल तक गाती रहेगी। चाहे भर्तृहरि- "कतिपय दिवसः स्थायिनी यौवनश्री" आलापते रहे पर वह विशुद्ध स्नेह स्वरूप जनक जननी के पवित्र हृदय से पूछिये जिन्होंने महदध्यवसाय और चिरलालसा से यह सुदिन प्राप्त किया है। माता की स्नेहभर लोरियां नवनीत और मिश्री मिश्रित कोरियां क्या यौवन श्रीकी श्रीवृद्धि के लिये नहीं थी ? आप इस यौवन को क्षुद्र न समझिये मान वा उन्नति का यही तो परम साधन है जिस धर्म अर्थ काम और मोक्ष को प्राप्त करना परम पुरुषार्थ समझा जाता है स्मरण रखिये इस चतुर्वर्ग का साधन सिवाय यौवन के और कौनसा वय हो सकता है ? कहां तक कहें यह यौवन शृंगार रूपी वृक्षवृन्द को जल देने वाला जलद है। क्रीड़ा रस का अपरिमिति कोष है। वसन्त सुहृद् कामदेव का प्रिय सुहृद है गुणावली रूपी मुक्तावली का उद्भवकार्णव है। कामिनी एवं कामुकों के नेत्र रूपी चकोरों का पूर्णेन्दु और क्या सौभाग्य लक्ष्मी का साक्षात् निधि यही (यौवन) होती है। हां यह माना कि इस अवस्था में अपने आप को संयत रखना कोई सुगम कार्य नहीं। इस अवस्था में जो विकृत न हुआ वही वास्तव में धन्य है।

शृंगार द्रुम नीरदे मनसिज क्रीड़ा रस खोडसि !
प्रद्युम्न प्रिय बान्धवे चतुरवांनुक्तफलोदन्वति ॥
तन्वी नेत्र चकोर पार्वण विधौ सौभाग्य लक्ष्मी निधौ।
धन्यः कोपि न विक्रियो कलयति प्राप्ते नवे यौवने ॥

कविर बिहारी लाल जी इस का यों वर्णन करते हैं।

इक भीजे चहले परे बूड़े बहे हजार।
किते न अवगुण जग करत नैवे चढ़ती बार ॥

पर यारो; इसमें इस बेचारे यौवन का क्या अपराध है ? कोई अग्नि का सदुपयोग न कर इस युक्ति को चरितार्थ करे-

कपड़े जला दिये हैं बैठे जो तापने।
अतिथि की शिकायत किस मुंह से, आपने॥

और लीजिये नारद में अमृत के समान गुण हैं पर दुरुपयोग से वही काल कूट हो कालके गाल में पहुंचा देता है। अभिप्राय यह है कि यौवनकाल में अपने आप को संयत रखते हुये त्रिवर्ग प्राप्तिका सदुद्योग करना चाहिये क्योंकि:-

पूर्वे वयसि यः शान्तः स शान्त इति मे मतिः
धातुषु क्षीयमाणेषु शमः कस्य न जायते॥

जो प्रथमावस्था में ही शान्त है वही शान्त है क्योंकि धातुओं के क्षीण होने पर तो सभी शान्त होते हैं फिर आप के शम की क्या बड़ाई है? पर हां यह याद रखना कभी इसी शान्ति में शान्त हो जाओ और फिर पश्चात्ताप करके कहो:-

तिफ्ली से फिरी आगई, मानिन्द खाब के।
हम मुन्तज़िर ही रह गए अहदे शबाब के॥

वास्तव में जीवन का परमानन्द इस यौवन अवस्था में ही मिलता है जब तक यह अवस्था है तब तक दुःख देव की उपासना करना भारी भूल है। इस से आगे वृद्धावस्था का शुभागमन होता है दुःख देव के उपासक तो उस को भी दुःखागार समझते हैं और बैठे बैठे यों कह बैठते हैं।

रुधिर मांस सब जर गयो खाल सिकुर गई मुख।
मन्द भई जठराग्नि बन्द भई अब भुख॥

परन्तु पौत्र और प्रपौत्रों की मण्डली में बैठे हुये किसी वृद्ध महाशय से पूछिये कि क्या वास्तव में यह जरा काल कन्या है? तब वह आप को बतलावेंगे कि खबरदार! फिर कभी ऐसा न कहना। हमें तो शैशवावस्था में तोतली वाणी बोलने में वह आनंद नहीं आया जो आज तोतली वाणी सुनने में आरहा है। यह बाल मण्डली की मधुर मुसकान चिन्तित चित्तको निश्चिन्त कर देता है। धूलि धूसरित पौत्र जब बाबा२ कहता गोद में आबैठता है और कभी२ डाढ़ी पकड़ कर खैंचने लगता है तब वह आनंद प्राप्त हो जाता है जो कभी प्राप्त ही नहीं हुआ। तुम यह न समझना कि गार्हस्थ्य सुख यौवन अवस्था में ही भोगा जाता है। ना उसका परमानन्द तो वृद्धा वस्था ही में प्राप्त होता है। पादपरिचर्या और हस्त परिवेषित भोजन में जो आनंद आज आरहा है वैसा आज तक आया ही नहीं। विद्या और धनोपार्जन का फल इसी अवस्था में प्राप्त हो सका है। यदि इसी काल में सुख का लव लेश नहीं तो तुम्हीं विचार करो कि सुख कब मिलेगा? क्योंकि बाल्यकाल तो विद्याध्ययन की भयंकर आधि के अधिकार में बिताया। यौवन का क्षणिक उफान धनोपार्जन के घोर अध्यवसाय में व्यतीत हुआ। भला अब भी यदि चित्त को चैन नहीं तो चिंता ही चिन्ता को दूर करेगी। आप इस अवस्था को व्याधि का अधिष्ठान कह कर कोसते होंगे पर विचार तो कीजिये किस अवस्था में व्याधि व्यथित नहीं करती कहा भी है कि "शरीरं व्याधिमन्दिरम्" यह शरीर ही जब व्याधि मन्दिर है तो किसी अवस्था विशेष की क्या निन्दा है? जो अपने मन को संयमित रखता है, शरीर के आरोग्य रहने की भरसक चेष्टा करता है, उसके लिये यौवन और वार्धक्य दोनों ही सुखद हैं पर जिस मनुष्य को आत्मसंयम का खयाल नहीं वह यौवन में ही जरठता का अनुभव करने लगता है। अतः इस निम्नांकित पद्य का प्रति दिन ध्यान करते रहना चाहिये फिर बुढ़ापे की कोई चिन्ता चिन्तित नहीं करेगी।

बीते यौवन बार पड़े जरा के जाल में।
करके यहि विचार और जराहित और को

प्रातःकाल किसी उपवन में विहार कीजिये ऋतुराज के पादपद्मों में नवनीत पल्लवों से पल्लवित वृक्षावली, आलि आलि संकुलित कुसुमाञ्जली प्रदान करने को खड़ी है। प्राची के भाल को भाग्यशाली बनाने के लिये भगवान् भास्कर कुंकुम बिन्दुत्व ग्रहण कर स्मित हास्य करते हुये समुदित होरहे हैं कोकिल को अपने गान करने का इस से बढ कर कौन सुअवसर मिलेगा? तभी तो वह मदमत्त हो अपने पञ्चम स्वर से श्रोता जनों के श्रुति पुटों में "कहू" कहू" का मधुर शब्द सुधा वर्षा रहे हैं। शीतल और सुगन्ध पवन के मन्दर थपेड़ों से भय-भीत हुई कराल दुःख की विकराल मूर्त्ति उलूक की नाईं न जाने किस गिरि कन्दर की शरण में काल व्यतीत कर रही है- उसका कहीं नामो निशान ही नहीं। जगत् पावनी भगवती जान्हवी कल कल निनाद करती हुई तीव्र वेग से प्रवाहित हो रही है। वह देवतात्मा हिमालय अपने गगनचुम्बी शिखाओं पर दिव्यौषधियों को धारण किये द्रष्टा जनों को अनिर्वचनीयानन्द का अनुभव करा रहा है। घुमड़ घुमड़ कर मेघ अपनी घमण्डित गर्जना से केकी के हृदय में न जाने किस विलक्षण सुख को समाविष्ट कर रहा है। जिस के कारण प्रमत्त हो कभी तो केकाका कल गान करता और कभी अपनी नृत्य कला का परिचय देता है। सुर सरिता की वह कलरव ध्वनी प्रोत्तुङ्ग शिखर-हिमाद्रि की वह दिव्यौषधियों का आल्हादप्रद सुगन्ध और बनश्री की नेत्रानन्द छटा दीखते ही बनती है ऐसे सुखद समय में सहसा यह धारणा होती है कि यहां आये हुये दुःख के दुःखित हृदय में भी दुःख का लव लेश नहीं रहता। जिस समय मेघ माला अपनी घोर गर्जना कर वारि धारा वर्षाने लगेगी तब तो दुःख भी कह उठेगा कि:-

है मन्दर प्यार बहती जलद जल वर्षा रहा।
अब कौन है इस जगत् में जिसका न मन हर्षा रहा॥

धर्म व्याख्या

(ले० पं० रेवाधर पांडेय बघासेरौली)

धर्मञ्चर धर्मान्न प्रमदितव्यम्।
धर्म को कर धर्म से प्रमाद मत कर॥

धर्म सारे जगत की प्रतिष्ठा है, लोक में धर्मिष्ठ की ओर लोक झुकते हैं और वह धर्म से पाप भगा देता है, सब कोई धर्म का सहारा लिए हुए हैं, इसी कारण से धर्म को सब से बढ कर कहते हैं। क्योंकि परलोक में सहायता के लिये न तो पिता माता न पुत्र और स्त्री न जाति के लोग खड़े होते हैं, वहां केवल धर्म ही सहारा देता है, बन्धु जन मरे हुए शरीर को काठ और ढेले की समान पृथ्वी पर त्याग विमुख हो चले जाते हैं परन्तु धर्म उसके साथ जाता है। इसीके साथ यह भी दिखाना आवश्यक है कि अधर्म से क्या फल मिलता है इसके लिये मनु महाराज ने कहा है, कि जो मनुष्य अधार्मिक है, जिसकी कमाई पाप की है और जो दूसरे के सताने में सदा लगा रहता है, वह इस संसार में सुख से नहीं बढ़ता। धर्म से दुःखी होकर

भी मनको अधर्म में न लगावे क्योंकि मनुष्य देखता है, कि अधार्मिकों का जल्दी उलट पलट हो जाता है। आचरण किया हुआ अधर्म लोक में पृथ्वी की नाईं तत्क्षण नहीं फलता है अर्थात् बोया हुआ बीज फसल में ही ऊगता है तैसेही किया हुआ अधर्म धीरे धीरे बढ़ता हुआ अन्ततः करने वाले की जड़ों को काटता है। यदि अपने को नहीं तो पुत्रों को, यदि पुत्रों को नहीं तो पौत्रों को और यदि पौत्रों को नहीं तो प्रपौत्रों को जाकर अधर्म का फल मिलता है, किया हुआ अधर्म निस्फल कभी नहीं जाता। अधर्म से पहिले तो बढ़ता है फिर कल्याण को देखता है अर्थात् नौकर, चाकर, गाय, घोड़ा, धनसे सुख भी पाता है और फिर शत्रुओं को भी जीतता है, परन्तु फिर पाप के परिपाक के समय मूल सहित नष्ट हो जाता है।

धर्म और अधर्म का फल जाननें के साथ ही मन में यह प्रश्न उठता है कि, धर्म क्या वस्तु है ? इसे किस प्रकार जानें ? और कहां से इसका उपदेश ग्रहण करें ? मनु महाराज कहते हैं-

विद्वद्भिः सेवितः सद्भिर्नित्यमद्वेषरागिभिः
हृदयेनाभ्यनुज्ञातो यो धर्मस्तन्निबोधत ॥

वेद शास्त्र के जानने वाले, और नित्य रागद्वेषादि-रहित धर्मात्मा पुरुषों ने जिसका पालन किया, और अन्तःकरण से जिसको कल्याण का साधन मानकर स्वीकार किया, उस धर्म को तुम सुनो, वेद शास्त्र के अनजान पुरुष धर्म के स्वरूप को ठीक ठीक न समझने से, तिलक माला आदि धारण करने मात्र को ही धर्म मानते हैं और उसमें स्मृति पुराण आदि के प्रमाण भी देते हैं। परन्तु वह केवल साम्प्रदायिक बाहरी चिन्ह हैं। इनको धर्म समझना भूल है। तभी तो भगवान् मनु ने छठे अध्याय में स्पष्ट कहा है "न लिंगं धर्म कारणम्" छापा तिलक आदि धर्म के कारण नहीं हैं। इसीलिए इस श्लोक में "विद्वद्भिः" पद रक्खा है वेद शास्त्र के ज्ञाता विद्वान् जन जिस धर्माचरण को करें, उसी को धर्म जानो, परन्तु यह भी समझ रखना आवश्यक है कि- विद्वान् भी यदि रागद्वेष और लोभ के वश में होजाय, तो वह लोभ में पड़कर एक को सत्य धर्म का उपदेश करते हैं, दूसरे को द्वेषवश सत्य से हटाने का उद्योग करते हैं। इसके अतिरिक्त जो मनुष्य अपने स्त्री, पुत्र आदि के प्रति प्रेम करने वाले, शत्रुओं से द्वेषरखनेवाले तथा धनादि के लोभी होते हैं, वह भी धर्म के तत्त्व को नहीं जान सक्ते इसलिये 'अद्वेषरागिभिः' कहा है अर्थात् राग द्वेष से रहित विद्वान् ही सन्त कहाते हैं इसीलिये मूल में 'सद्भिः' कहा है। कितने ही विद्वान् रागद्वेष से रहित होते हुए भी, राजभय से, अथवा लोकापवाद से, दिखावटी धर्म का आचरण करते हैं। इस प्रकार का धर्म सच्चा धर्म नहीं, किन्तु रागद्वेष रहित विद्वान् सत्पुरुष अन्तःकरण से जिस को धर्म मानकर आचरण करते हैं, वही धर्म कहाता है। इसी के मूल में 'हृदयेनाभ्यनुज्ञातः' कहा है।

इसके अतिरिक्त धर्म का उपदेश वेद से मिलता है, कितने ही विद्वान् अनुमान उपमान आदि प्रमाणों से धर्म को सिद्ध करने का साहस करते हैं, परन्तु वेद अर्थात् शब्द प्रमाण के सिवाय और किसी प्रमाण से धर्म की सिद्धि नहीं हो सकती। अनेक आचार्यों का भी कहना है कि, प्रत्यक्ष प्रमाण से धर्म की सिद्धि नहीं होती, क्योंकि प्रत्यक्ष तो विद्यमान वस्तु का ही प्रतिपादन करता है, और धर्म अनुष्ठान करने के पीछे उत्पन्न होता है। अतः उस समय प्रत्यक्ष प्रमाण के

लिये स्थान ही नहीं अनुष्ठान करने के पीछे प्रसन्न हुआ जी धर्म, रूप आदि से रहित होने के कारण इन्द्रियों से नहीं जाना जाता इसलिये इस अवस्था में भी प्रत्यक्ष प्रमाण सम्भव नहीं। अनुमान प्रमाण से भी धर्म नहीं जाना जाता। एक पर्वत से धूआं उठता हुआ देख कर यह अनुमान किया जाता है कि वह पर्वत अग्निवाला है। परन्तु यह सिद्ध करने के लिए पहिले इस बात को प्रत्यक्ष प्रमाण से देखना आवश्यक है कि जहां जहां धुआं होता है वहां अग्नि हुआ करती है। अर्थात् अनुमान प्रमाण के आश्रित है। तो फिर जब कि, धर्म के विषय में प्रत्यक्ष प्रमाण सम्भव ही नहीं फिर उसका अनुमान हो कैसे हो सकता है।

किसी के समान न होने के कारण धर्म उपमान प्रमाण से भी सिद्ध नहीं होता। अतः धर्म सिद्धि के लिये शब्द प्रमाण ही मानना होगा। अर्थात् वेद के प्रमाण से ही धर्म जाना जा सक्ता है। पूर्व मीमांसा के व्याख्याकार कहते हैं कि, 'नोदनैवप्रमाणम् अर्थात् केवल वेद की आज्ञा ही धर्म जानने में प्रमाण है। सायणाचार्य लघुपाराशरी की टीका में धर्म, की व्याख्या करने वालों की एक वाक्यता करते हुए कहते हैं कि "स्वर्ग साधनस्य शास्त्रैकसमधिगम्यातिशयस्य धर्मत्वेन सर्व सम्पतिपत्ते' अर्थात् केवल शास्त्र द्वारा ही जानने योग्य स्वर्ग का साधन जो वस्तु है उसका नाम धर्म है इसी लक्षण को अन्य व्याख्याकारों ने माना है। मनुमहाराज भी इसी सिद्धान्त का समर्थन करते हुए धर्मपालन के लिए निम्न उपदेश करते हैं।

चतुर्भिरपि चैवैतै नित्यमाश्रमिभिर्द्विजैः।
दश लक्षणको धर्मः सेवितव्यः प्रयत्नतः॥
धृति क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्म लक्षणम्॥

ब्रह्मचारी आदि चारों आश्रम वालों को और विशेष कर द्विजों को दश लक्षण वाले धर्म का सेवन यत्न से करना चाहिये। धैर्य 'दूसरे की की हुई बुराई सह लेना' मन का रोकना' चोरी न करना' 'बाहर भीतर से शुद्ध होना' नेत्र आदि इन्द्रियों को वश में रखना शास्त्र का तत्व ज्ञान, आत्मा का ज्ञान, सत्य बोलना, और क्रोध न करना ये धर्म के दश लक्षण हैं। इन्हीं को गौतम ऋषि ने आत्मा के गुण कहा है। इसी प्रकार बृहस्पति जी ने भी इस को साधारण धर्म माना है। योगी याज्ञवल्क्य जी की भी यही, सम्मति है कि,

'सत्यमस्तेयमक्रोधो ह्री शौचं धीरतिर्दमः।
संयतेन्द्रियता विद्या धर्मः सर्व उदाहृतः॥'

इसी प्रकार व्यासदेव जीने भी महाभारत में कहा है।

'सत्यं दमस्तपः शौचं सन्तोषो ह्री क्षमार्जवम्।
ज्ञानं शमो दया ध्यानमेष धर्मः सनातनः॥

यद्यपि विशेष धर्मों के भेद के पृथक मत, सम्प्रदाय, मजहब और वर्ण आश्रमों में भिन्न भिन्न धर्म प्रतीत होते हैं। परन्तु इन्हीं साधारण धर्म लक्षणों की पुष्टि के लिए, आचार्यों ने समय समय पर आवश्यकतानुसार भिन्न भिन्न सम्प्रदायों का निर्माण किया है। भूमण्डल पर ऐसा कोई भी नवीन, प्राचीन सम्प्रदायक या फिरका नहीं है, जिसमें पूर्वोक्त दश साधारण धर्मों के लक्षणों का उपदेश न हो बौद्ध, इसाई, पारसी आदि भी इन्हीं धर्म लक्षणों के पालनार्थ अपने२ मतों पर आरूढ़ हैं।

इन्हीं मनूक्त दश धर्म लक्षणों के अन्तर अन्य ऋषियों के कहे अधिक लक्षणों का समावेश हो

आता है। इस कारण सर्वोपकारी समझ इन्हीं मनुक्त दश धर्म लक्षणों की व्याख्या करना और उन की ओर पाठकों की श्रद्धा को आकर्षित करना इस लेख का उद्देश्य रक्खा गया है।

सुख का साधन।

(ले० श्रीयुत किशोरी लाल जी)

श्री पुर्ण ब्रह्म परमात्मा की असीम कृपा से प्रेरित होकर यह क्षुद्रातिक्षुद्र लेखक योग्यता न रहने पर भी कुछ भगवत् चर्चा करने का प्रयास कर रहा है। यदि पाठकों को इसके द्वारा यत्किञ्चित् भी लाभ पहुंचा तो यह अपने को कृतार्थ समझेगा।

सुखी बनने के लिये समस्त चराचर प्राणी लालायित हो रहे हैं, किन्तु सुख का साधन क्या है, इस बात को न जानने के कारण इसके विपरीत आचरण करके दुःखी हो जाते हैं। जैसे, विषय राज्य में राजत्व करने वाले पुरुषों की ओर देखा जाय तो, वे लोग नाना प्रकार की योग्य वस्तुओं को संग्रह करके पद पद पर विपदग्रस्त होते हुये, उनको भोग कर सुखी होना चाहते हैं। लेकिन यदि वास्तविक दृष्टि से विचार कर देखा जाय तो, उनका हृदय हर समय अशान्ति की आग से धधक रहा है; शान्ति का कोई चिन्ह ही नहीं दिखलाई देता। वे महान् दुःखी हुये हुये उन भोगों द्वारा अपने आप ही भोगे जाते हैं। जैसे महाराज भर्तृहरि के वैराग्य शतक में कहा है:-

भोगा न भुक्ता वयमेव भुक्ता, तपो न तप्तं वयमेव तप्ता।
कालो न यातो वयमेव याता, तृष्णा न जीर्णा वयमेव जीर्णाः

अर्थात्-भोगों को हमने नहीं भोगा, लेकिन भोगों ने ही हमारा भुक्त न कर दिया। तप को हम लोगों ने नहीं तपा लेकिन तप ने ही हमें तपा डाला। समय को हम लोगों ने नहीं बिताया, लेकिन समय ने ही हम लोगों को बिता डाला। हम लोग वृद्धावस्था को प्राप्त हो गये लेकिन हमारी तृष्णा अभी तक जीर्णावस्था को प्राप्त नहीं हुई। तात्पर्य्य यह है कि जीवन पर्यन्त भोगों को भोग कर भी सुख की आशा की जाय तो केवल दुराशा मात्र है। सुख है तो केवल, वैराग्यादि द्वारा भगवद्भजन करने में।

भगवद्भक्तों का सन्तों का जीवन चरित्र देखने से कैसा शान्त और सुखमय प्रतीत होता है। कारण वे सुखस्वरूप नारायण भगवान वासुदेव को प्राप्त कर चुके अथवा भजन ध्यान कीर्तन द्वारा उनके भव्य रूप का दर्शन करने के लिये आकुल हो रहे हैं। इसी लिये सुखी तो वही हो सकता है जिसने महात्माओं का श्रद्धायुक्त सङ्ग करके उनके बताये हुये मार्ग का अवलम्बन करने के लिये चेष्टा की है। अर्थात् भगवान् द्वारा गीता में बताये हुये (अ० ४ श्लो० ३४) के अनुसार महात्मा लोगों के पास जाकर सेवादि द्वारा प्रसन्न करके उनके बताये हुये साधन में लग जांय भगवान् ने श्री गीता जी में जगह जगह श्रद्धा को महत्व देते हुये अर्जुन को समझाया है। अ० ४ श्लोक० ३९ और अ० ६ श्लो० ४७ आदि। लेकिन अश्रद्धायुक्त संग से विशेष लाभ नहीं होता।

आधुनिक जगत् में तो श्रद्धा का अभाव प्रायः ही देखने में आता है। महात्मा लोगों के पास जाना तो दूर रहा यदि वे स्वयं ही दया करके उपदेश करें तो भी हम लोग एकाग्र मन से उनकी बातों पर ध्यान नहीं देते। हम लोगों ने अर्जुन की तरह सब तरफ से

मन को हटा कर एकाग्रता से भगवद्भक्तों की बातों को सुना नहीं. यदि सुनते तो कभी के (अर्जुन की तरह) सदा के लिये सुखी हो गये होते। लेकिन हम लोगों का मन तो दुःखरूप सांसारिक विषय वासनाओं में भटक रहा है. शरीर साधुओं के पास पड़ा हुआ है। जैसे महात्मा कबीरदास जी ने कहा है।

मन दिया कहँ और ही, तन साधुन के संग।
कहे कबीर कोरी गजी, कैसे लागे रंग॥

इसी प्रकार हम लोगों को भी उनके संग का अच्छा असर नहीं होता, दूसरे हम लोगों का हृदय जन्म जन्मान्तर के किये हुये पापों से गन्दा तथा कठोर हो गया है। जैसे:-

संगति भई तो क्या भया, हृदय भया कठोर।
नौ नेजा पानी चढ़े, तऊ न भीजे कोर॥

इसी के अनुसार हम लोग भी महात्मा लोगों के संग का उतना लाभ नहीं उठा सकते, और इससे बड़ा दुर्भाग्य क्या हो सकता है। जैसे-

साखी शब्द बहुत सुना, मिटा न मन का दाग।
संगति से सुधरा नहीं, ताका बड़ा अभाग॥

इसलिये सुखी होने की इच्छावाले, तथा भगवन् चरणारविन्द में मन लगाने के लिये उत्सुक पुरुषों को शीघ्रता करनी चाहिये, क्योंकि, इस समय भक्तों द्वारा की हुई जो भक्ति का प्रवाह बह रहा है, वह क्या बराबर रहेगा? क्या भगवत् कथामृत पान करने का अवसर इन कानों को बराबर मिलता रहेगा? क्या, हमलोगों की इन्द्रियां बराबर ऐसी ही रहेंगी, या हमलोग कभी भी मृत्यु द्वारा ग्रसित न होंगे, ?, यदि बीच में ही मृत्यु ने आघेरा तो फिर हाथ मलने से कुछ न होगा। महाराज भर्तृहरि जी ने कहा है।-

यावत् स्वस्थमिदं कलेवर गृहं, यावच्च दूरे जरा।
यावच्चेन्द्रिय शक्तिरप्रतिहता, यावत्क्षयो नायुषः॥
आत्मश्रेयसि तावदेव विदुषा, कार्यः प्रयत्नो महान्।
प्रोद्दीप्ते भवने च कूप खननं, प्रत्युद्यमः कीदृशः॥

अर्थात्-जबतक यह गृह कलेवर स्वस्थ है, जब तक बुढ़ापा दूर है, जब तक इन्द्रियों में शिथिलता प्राप्त नहीं हुई है, इसके पहिले ही समझदार पुरुषों को चाहिये, अपने कल्याण के लिये प्रयत्न करें। गृह में आग लगने के पश्चात् कुआ खोदने का प्रयत्न करने से क्या लाभ? फिर सिवा पश्चात्ताप के कोई लाभ नहीं जैसे गोस्वामी श्री तुलसीदास जी ने रामायण में कहा है-

ते पाछे दुःख पावहीं, सिर धुनि धुनि पछतांहि।
कालहि, कर्महि, ईश्वरहि, मिथ्या दोष लगांहि॥

इसीलिये समय को अमूल्य समझ कर सावधान होना चाहिये, क्योंकि आयु दिन प्रति दिन घटती जाती है। जैसे महात्मा सुन्दरदास जी ने कहा है:-

जबते जन्म लेत, तबहीते आयु घटे,
भाई सो कहत मेरो बढ़ो होत जात है॥
आज और काल और, दिन दिन होत और,
दौरयो दौरयो फिरत, बोलत अरु खात है॥
बालपन बीत्यो जब यौवन लाग्यो है आई,
यौवन हू बीते बूढ़ो डोकरो दिखात है॥
'सुन्दर' कहत ऐसे देखत ही बुझगयो,
तेल घटि गये जैसे दीपक बुझात है॥

ऐसे ही, आयुष्य रूपी सूर्य के अस्त होने पर कुछ नहीं होगा, इसीलिये समय के अमूल्यत्व को ध्यान में रखना चाहिये। किसी आयुर्दभक्त के मुख से सुनी हुई बात है, जिस के दो घंटे नित्य व्यर्थ में जाते हों, तो साठ वर्ष की उम्र का हिसाब लगाने से इस

वर्ष व्यर्थ गये। इस से १० वर्ष की उम्र कम होती तो कहीं अच्छा था। क्योंकि पृथ्वी का भार दूर होता, और भगवान् का ऋण कमती होता। इसलिये मुमुक्षु पुरुषों को शीघ्र ही प्रयत्न द्वारा सर्वसुखों के धाम उस आनन्द कन्द वासुदेव के चरणारविन्द का आश्रय ग्रहण करना चाहिये।

उपर्युक्त समस्त बातें प्रायः महात्माओं से सुनि हुई एवं सत्शास्त्रों से अवलोकन की हुई लिखी गई हैं, न कि लेखक की बुद्धिमत्ता से, क्योंकि लेखक तो स्वयं अभी सुख से दूर है, लेकिन मुमुक्षु अवश्य है और यह आशा रखता है कि किसी दिन उस परमपावन परमात्मा के चरणों का आश्रय ग्रहण कर सकेगा।-

---

त्वंपद विवेक

गतांक से आगे।

[ले० श्री महात्मा राम]

अपंचीकृत पंच महाभूतों के सत्तरह तत्वों का सूक्ष्म शरीर है। पांच ज्ञान इन्द्रिय, पांच कर्मेन्द्रिय, पांच प्राण, एक मन, एक बुद्धि ये सतरह तत्व हैं। इन सतरह तत्वों के नाम तथा कारण रूप देवता और विषय यथा क्रम से दिखलाते हैं।

ज्ञानेन्द्रियों के नाम।

श्रोत्र, त्वचा, नेत्र, जिह्वा, घ्राण, पांच ज्ञानेन्द्रियां हैं। इन की उत्पत्ति पांचों भूतों के न्यारे २ सत्व गुण से है।

देवता-आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथवी हैं।
विषय-शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध हैं।

कर्मेन्द्रियां

वाक्, पाणि, पाद, उपस्थ, गुदा पांच कर्मेन्द्रियां हैं। इन की उत्पत्ति पांचों भूतों के न्यारे २ रजो गुण से है देवता-अग्नि, इन्द्र विष्णु, प्रजापति, यम। विषय-भाषण, ग्रहण, गमन, विषयभोग, विसर्ग॥

पांच प्राणों की उत्पत्ति पांचों भूतों के मिले हुए रजोगुण से है। प्राण, अपान, व्यान, उदान, समान, इस भेद से एक ही प्राण पांच प्रकार का है॥

पंचभूतों के मिले हुऐ सत्व गुण से मन बुद्धि रूप अन्तःकरण हुआ है। मनका देवता चन्द्रमा है, बुद्धि का देवता ब्रह्मा है, चित्त और अहंकार का मन, बुद्धि के अन्तर्भाव है। इन सतरह तत्वों का सूक्ष्म शरीर है। सतरह तत्व पंचभूतों के कार्य हैं। आत्मा इन का दृष्टा साक्षी इनको प्रकाशने वाला इन से न्यारा है। जैसे नृत्य शाला में एक दीपक जलता है और वहां पर राजा, मंत्री, सेवक गण तथा नायका, बजंत्री और तमाशा देखने वाले सभाके आदमी जब सभा में बैठे हों तबभी वह दीपक सबको प्रकाशता है और जब कोई भी न रहे तब सब के अभाव में भी प्रकाशता है। इससे सिद्ध हुआ कि स्थूल देह रूप नृत्य शाला में साक्षी आत्मा रूप दीपक है और चिदाभास जीवात्मा रूप राजा है, मन प्रधान मंत्री है, पांच प्राण सेवक हैं, बुद्धि गायका है, दस इन्द्रिया बजंत्री हैं, पांच विषय सभा के लोग हैं। इन सब को जागृत स्वप्न में साक्षी आत्मा रूप दीपक प्रकाशता है तथा सुषुप्ति अवस्था में इनसब के अभाव को भी प्रकाशता है। जाग्रत में अन्तःकरण और इन्द्रियां दोनों की सहायता से आत्मा प्रकाश कर्ता है। और स्वप्न में केवल अन्तःकरण की सहायता से आत्मा प्रकाश कर्ता है। सुषुप्ति में अंतःकरण

तथा इन्द्रियों के बिना ही स्वयं प्रकाश करता है। तीनों अवस्थाओं में होने वाले व्यवहार का जो ज्ञान है यह ही आत्मा का प्रकाश है॥

कारण शरीर

जब अत्यन्त गाढ़ सुषुप्ति में बुद्धि की वृत्ति अपने कारण रूप अज्ञान में लय होजाती है तब जागृत स्वप्न के पदार्थों का ज्ञान भी नहीं रहता केवल शून्य अवस्था रहती है। जब पुनः जागृत होता है तब स्मरण होता है कि मैं बड़े सुख से सोया कुछ भी खबर नहीं रही। यहां सुख तथा अज्ञान दो वस्तुओं की स्मृति होती है। इस से जाना जाता है कि सुषुप्ति अवस्था में इन्द्रियों का विषय सुख तो है नहीं केवल आत्मा का ही सुख है। और कुछ भी खबर नहीं इस स्मृति से अज्ञान भी प्रतीत होता है इसी वास्ते नहीं जानता है कि यह आत्मा का ही आनंद है। यह बुद्धि की विलीन अवस्था रूप अज्ञान ही कारण शरीर है। इस कारण शरीर से ही स्वप्न जागृत यह दोनों शरीर उत्पन्न होते हैं। जागृत स्वप्नादि तीनों अवस्था तथा स्थूल सूक्ष्म कारण तीनों शरीरों में होने वाले भाव अभाव तथा अंतःकरण की वृत्तियां इन सब को आत्मा ही अपनी सत्ता स्फूर्ति देता है। तथा सब का द्रष्टा है और सब से न्यारा है॥

षट ऊर्मि॥ जनम, मरण, भूख, प्यास, सुख, दुःख, यह षट् ऊर्मि संसार रूप सागर की लहरें हैं। षट् विकार॥ जन्म, अस्तित्व, वृद्धि, विपरिणाम, अपक्षय, विनाश, यह षट् विकार, तथा षट् ऊर्मि स्थूल देह के धर्म हैं।

आत्मा के धर्म नहीं हैं। आत्मा इन धर्मों का प्रकाशक है॥

अपूर्ण

खड्ग राम नाम है।

[ले० श्री गोविन्दराम जी अग्रवाल]

शंभु तिमि शुक्र पर, भीम जरासिंध पर-
रावण निशंक पर, राम घनश्याम है॥ १॥
काली फन बालकृष्ण, हरी हिरन्याक्ष पर-
सिंह ज्यों मतंगन को, डारै धराधाम है॥ २॥
कुंभज ज्यों सिंधु पर-चक्र शिशुपाल पर-
दानव विदारन को, जननी ललाम है॥ ३॥
पाप तम पुंजन को-नाशै ज्यों दिवाकर सो-
त्रास यम दूतन को-"खड्ग राम नाम है"॥ ४

क्वचिदन्यतोऽपि

(ले० श्री मधुसूदन जी मिश्र बी० ए०)

गोसाईं जी ने अपनी रामायण के प्रारम्भ में लिखा है:-

नाना पुराण निगमागम सम्मतं यत्।
रामायणे निगदितं क्वचिदन्यतोऽपि॥
स्वान्तः सुखाय तुलसी रघुनाथ गाथा।
भाषा निबन्धमतिमञ्जुल मातनोति॥

अर्थात् नाना पुराण, वेद, धर्म शास्त्र, रामायण तथा अन्यान्य स्थानों से भी जो बातें सज्जनों की

सम्मत हैं उन्हें संग्रहीत कर रघुनाथ जी की अति सुन्दर कथा को भाषा काव्य के रूप में गूंथ कर तुलसीदास अपने अन्तरात्मा के सुखके लिये प्रबन्ध रचना करते हैं। ऊपर गोसाईंजी ने 'क्वचिदन्यतोऽपि' शब्दों का प्रयोग किया है। उसका अर्थ है "कोई अन्य स्थानों से भी"। रामायण इतने बड़े ग्रंथ के संकलन में बहुत स्थानों से आश्रय और भाव लेकर तथा अपनी कल्पना भाव भक्ति अपिच पद्यरचना की आवश्यकताओं के नियमों का पालन करते रचना की है। प्रारम्भ ही में इन आधारों को स्वीकार किया है। अद्भुत, अध्यात्म, वाल्मीकि रामायण तथा भागवत भारतादि पुराणों में श्री रामचन्द्र जी की कथा विविध विस्तार पूर्वक वर्णित है।

कालिदास, भवभूति, जयदेव आदि कवियों ने इसी कथा को काव्य वा नाटक के रूप में रच दिया है। कथा भाग के लिये ऐसे ग्रन्थों से जहांसे जो रुचा सो उठाया। साथ ही विविध भावों को वेद शास्त्र गीता भागवतादि से लिया है। वे भाव एक वा अनेक स्थानों में उपलब्ध होते हैं। सो गोसाईं जी ने किस आधार से इन भावों को लिया है यह निश्चय पूर्वक निर्देश करना तो कठिन है। परन्तु भाव सादृश्य और प्रबन्ध परम्परा से बलपूर्वक अनुमान दृढ़ होता है कि वर्षा और शरद् ऋतु के वर्णनात्मक पद्य किष्किन्धा काण्डमें गोसाईं जी ने श्रीमद्भागवत् दशम स्कन्ध के १९ वें अध्याय के आधार पर रचे होंगे॥ इसी प्रकार अयोध्या काण्ड में वर्णित भगवान् के निवास के लिये वाल्मीकि द्वारा बतलाये गये विविध स्थानों का उल्लेख विलास हो न हो अध्यात्मरामायण में बताये आधारों पर अपनी कल्पना द्वारा वर्धित रूप में गोसाईं जी ने रचकर उनकी सरसता उपोद्बलित वा पुष्ट की है। जो लोग भाव के ग्राही हैं वे इन पंक्तियों में रसास्वादन की पर्याप्त मात्रा पाते हैं और फूले नहीं समाते। भगवान् के रहने के लिये स्थानों के निर्देश में अनुवाद को प्रश्रय दिया है ऐसा नहीं कहा जा सकता। तथापि भावों की कल्पना के आधार ये ही पद्य होंगे ऐसा चित्त बार २ स्वीकार करता है। वे पद्य यों हैं:-

शान्तानां समदृष्टीनां अद्वेष्टृणां च जन्तुषु।
त्वामेव भजतां नित्यं हृदयं तेऽपि मंदिरम्॥
धर्माधर्मान्परित्यज्य त्वामेव भजतोऽनिशम्।
सीतया सह ते राम तस्य हृत्सुख मंदिरम्॥
त्वन्मन्त्र जापको यस्तु त्वामेव शरणं गतः।
निर्द्वन्द्वो निस्पृहस्तस्य हृदयं ते सुमन्दिरम्॥
निरहंकारिणः शान्ता ये रागद्वेषवर्जिताः।
समलोष्टाश्मकनकास्तेषां ते हृदयं गृहम्॥
त्वयिदत्तमनोबुद्धिर्यः संतुष्टः सदा भवेत्।
त्वयि संन्यस्त कर्मा यस्तन्मनस्ते शुभं गृहम्॥
यो न द्वेष्ट्यप्रियं प्राप्य प्रियं प्राप्य न हृष्यति।
सर्वं मायेति निश्चित्य त्वां भजेत्तन्मनो गृहम्॥
षड्भावादि विकारान्यो देहे पश्यतिनात्मनि।
क्षुत्तृट् सुखं भयं दुःखं प्राण बुद्धोर्निरीक्षते॥
संसारधर्मैर्निर्मुक्तं तस्य ते मानसं गृहम्॥
पश्यंति ये सर्वगुहाशयस्थं त्वांचिद्घनं सत्यमनंतमेकम्
अलेपकं सर्वगतं वरेण्यं तेषां हृदब्जे सहसीतया वस

निरान्ताराभ्यासदृढ़ीकृतात्मनां,
त्वत्पादसेवापरिनिष्ठितात्मनां।
त्वन्नामकीर्त्याहतकल्मषाणां,
सीतासमेतस्य गृहं हृदब्जे॥

कहा है 'नभः पतन्त्यात्मसमं पतत्रिणः' अर्थात् पक्षी अपने शरीर और सामर्थ्य के अनुसार थोड़ा वा अधिक ऊंचे उड़ते हैं। संभव है विद्वान् लोग अधिक उपयुक्त स्थान खोज निकालें जहां से गोसाईं जी ने भाव लिए हों पर जब लों बड़े लोग उन्हें निर्देश नहीं करते तब लों मन्द बुद्धि के ही खोजों को आधार मानना पड़ता है।

और ग्रन्थों की अपेक्षा अध्यात्म रामायण का आधार गोसाईं जी ने स्पष्ट शब्दों में स्वीकार किया है:-

यत्पूर्वं प्रभुणाकृतं सुकविना श्रीशम्भुना दुर्गमम्,
श्रीमद्रामपदाब्ज भक्तिमनिशं प्राप्तैव रामायणं।
मत्वा तद्रघुनाथनामनिरतः स्वान्तस्तमः शान्तये
भाषाबद्धमिदं चकार तुलसीदासस्तथा मानसम्

रामचरित मानस की अनेक पंक्तियों का भाव-सादृश्य प्राचीन संस्कृत साहित्य में पाया जाता है। कहीं२ भाव स्पष्ट २ लिया गया है और कहीं२ पद्य की आवश्यकताओं तथा कल्पना के विलासों के कारण परिवर्तन भी प्रकट होता है। प्रस्तुत लेख में ऐसे थोड़े से उदाहरण उपस्थित करने की चेष्टा की जाती है जिनमें भाव सादृश्य न्यूनाधिक प्रकट होता है। विद्वान् जन ऐसे अनेक उदाहरण उपस्थित कर सकते हैं।

मूक होई वाचाल, पंगु चढ़ै गिरिवर गहन।
जासु कृपासु दयालु, द्रवहु सकल कलिमल दहन॥
मूकं करोति वाचालं पंगुं लङ्घयते गिरिम्।
यत्कृपा तमहं वन्दे परमानन्द माधवम्॥

प्रत्येक मनुष्य जन्मते ही मूक और पंगु रहता ही है।

अति अपार जे सरित वर, जो नृप सेतु कराहिं।
चढ़ि पिपीलिका परम लघु, बिनु श्रम पारहिं जाहिं॥
विषमोऽपि विगाह्यते क्रमः कृत,
तीर्थाः पयसामिवाशयः।
(किरातार्जुनीय)

गिरा अर्थ जल बीचि सम, कहियत भिन्न न भिन्न।
बंदौं सीताराम पद, जिन्हहिं परम प्रिय खिन्न॥
वागर्थाविव सम्पृक्तौ वागर्थ प्रतिपत्तये।
जगतः पितरौ वन्दे पार्वती परमेश्वरौ।
(रघुवंश)

कटकत्वं पृथक् हेम्नः तरङ्गत्वं पृथक् जलात्।
यथा नहि भवत्येवं न जगत्पृथगीश्वरात्॥
(शान्तरस निर्देश)

ध्यान प्रथम युग मख विधि दूजे। द्वापर परितोषत प्रभु पूजे।
कलि केवल मलमूल मलीना, पाप पयोनिधि जन मन मीना॥
नाम काम तरु काल कराला, सुमिरत शमन सकल जग जाला
ध्यायन् कृते यजन् यज्ञैस्त्रेतायां द्वापरेऽर्चयन्।
यदाप्नोति तदाप्नोति कलौ संकीर्त्य केशवम्॥
(विष्णु पुराण)

भाय कुभाय अनख आलसहूं, नाम जपत मंगल दिसिदसहूं।
सांकेत्यं पारिहास्यं वा स्तोभं हेलनमेव वा।
वैकुण्ठनाम ग्रहणं अशेषाघहरं विदुः॥
(भागवत्)

जिन हरि कथा सुनी नहिं काना, श्रवण रन्ध्र अहिभवन समाना
बिले बतोरुक्रमविक्रमान्ये,
न शृण्वतः कर्णपुटे नरस्य॥
(भागवत्)

बचन संत दरश नहिं देखा, लोचन मोर पंख कर लेखा ॥

बर्हायिते ते नयने नराणां,
लिङ्गानि विष्णोर्न निरीक्षतो ये ॥

(भागवत्)

ते सिर कटु तुमरि अनुकूला, जे न नमत हरि गुरुपद मूला ॥

भारः परं पट्टकिरीटजुष्टं,
अप्युत्तमाङ्गं न नमेन्मुकुन्दम् ॥

(भागवत्)

जिन हरि भक्ति हृदय नहिं आनी।
जीवत शव समान ते प्रानी ॥
श्रावौ करौ नो कुरुतः सपर्यां,
हरेर्लसत्कञ्चन कङ्कणौ वा ॥

(भागवत्)

अपूर्ण

भजन

चरखा चले सुरत विरहिन का ॥
काया नगरी बनी अति सुन्दर, महल बना चेतन का।
सुरत भांवरी होत गगन में, पीढा ज्ञान रतन का ॥
चित चमरक तिरगुण के टिकुवा, माल मनोरथ मनका
पौनी पांच पचीस रंग की, कुकरी नाम भजन का ॥
दृढ वैराग्य गाढ दोउ खूंटा, मंझा जोग जुगत का।
द्वादश नाम धरी दोई पखुरी, हथिया सार शब्द का ॥
सिहीन सूत सन्तजन कातें, मांझा प्रेम भगति का।
कहै कबीर सुनो भाई साधो, जुगन जुगन सत मतका ॥

२

रमैया की दुलहन ने लूटा बाजार ॥
सुर पुर लूटा नागपुर लूटा, तीन लोक मंच गई हाहाकार
ब्रह्मा लूटे माहादेव लूटे, नारद मुनि के परी पिछार ॥
शृंगी की भिंगी का डारी, पराशर के बदर बिदार।
कन फूका बिदाकाशी लूटे, जोगेश्वर लूटे करत बिचार
हमतो बचगये साहिब दया से, शब्द डोर गहि उतरे पार
कहै कबीर सुनो भाई साधो, इस ठगनी से रहो हुशियार

३

है सब में सब ही ते न्यारा ॥
जीव जन्तु जलथल सब ही में,
शब्द व्यापक बोलन हारा।
सब के निकट दूर सब ही तें,
जिन जैसा मन कीन्ह विचारा ॥
सार शब्द को जो जन पावै,
सो नहिं करत नेम आचारा ॥
कहै कबीर सनो भाई साधो,
शब्द गहे सो हंस हमारा ॥

४

काया गढ़के मवासी जाग हो ॥
जो बन्दे तुम जागत रही हो,
तुमही का मिलत सुहाग हो।
जागत सहर में चोर न मूसै,
नहीं लुटे भण्डार हो ॥
अनहद शब्द उठैं घट भीतर,
चढके गगन गढ गाज हो ॥
कहै कबीर सुनो भाई साधो,
सार शब्द टकसार हो ॥

५

विरहिन सुनो पिया की बानी

सहज स्वभाव मूल रहु रहनी, सुनो शब्द सुरति तानी
शील सन्तोष के बांधो कांगर, डोर रहो मगन दिवानी
दुई फल तोड़ मिलो हंसन में, सोई नाम निशानी ॥
तत्त भेष धारै जो विरहिन, तो पिय के मन मानी ॥
कुमति जराय सुमति बजियारी, तब सूरत ठहरानी ॥
सो हंसा सुख सागर पहुंचे, भरै मुक्ति जहां पानी ॥
कहै कबीर सुनो भाई साधो, यह पद है निर्बानी ॥
जो या पद की निन्दा करि है, ताको नरक निशानी

६

ऐसी रहन रहै वैरागी

सदा उदास रहै माया से, सत्य नाम अनुरागी ॥
क्षमा की कण्ठी शील सरोनी, सुरति सुमरनी जागी ॥
टोपी अभय भक्ति माथे पर, काल करमना त्यागी ॥
ज्ञान गूदड़ी मुक्ति मेखला, सहज सुई ले तागी ।
जुक्ति जमात कूबरी करनी, अनहद धुनि लौ लागी ॥
शब्द अधार अधारी कहिये, भीख दया की मांगी ।
कहैं कबीर प्रीति सतगुरु से सदा निरन्तर लागी ॥

७

धुनि सुनके मनुवां मगन हुवा ।

लाय समाज रहो गुरु चरणा, अन्त काल दुःख दूर हुवा
शून्य शिखर पर मालर, झलके बर्षै अमीरस बूंद चुवा
सुरत निरत की डोरी लागी, तेहि चढ़ हंसा पार हुवा
कहै कबीर सुनो भाई साधो, अगम पन्थ पर पांव दिया

८

हंसा अमर लोक पहुंचावो ।

मन के मरम धरो गुरु आगे, ज्ञान घोड़ चढ आवो ।
सहज पलाण चित्त के चाबुक, अलख लगाम लगावो
निरख परख के तरकस बांधो, सुरत कमान चढ़ावो ।
रवि को रथ सहजे में मिलि है, वोही को साने घुमावो
कुमति काट अलग करि डारो, सुमति के नीर चुवावो ।
सार शब्द को बान्ध कटारो, वाही से मार हटावो ॥
धीरज क्षमा का संग लिये दल, मोह के महल लुटावो ।
ताहि समय ममोसी राजा, वाही को पकड़ मंगावो ॥
दिलका भेदा सहजहीं मिलि है, अनहद शंख बजावो ।
कहै कबीर तोरे सिर पर साहिब, ताही में लौ लावो ॥

९

भजन बिन यौं ही जन्म गंवायो ।

गर्भवास में कौल कियो थो तब तोही बाहर आयो ॥
जठर अग्नि ते काढ निकारयो गांठ बांध क्या लायो॥
वह वह मुवा बैलको न्याई सोय रहो बठ खायो ॥
कहै कबीर सुनो भाई साधो चौरासी भरमायो ॥

१०

बन्दे करले आप निबेरा ।

आप चेत लखु आप ठौर करु, मूये कहां घर तेरा ॥
यही अवसर नहीं चेत्यो प्राणी अन्त कोई नहीं तेरा ॥
कहै कबीर सुनो भाई साधो कठिन कालका घेरा ॥

११

सिपाही मन दूर खेलन मत जाव ।

दूर खेलन से मनुवा दुखित होय गगन मण्डल मठ छाव
यही पार गंगा वोही पार जमुना बीच सरस्वती न्हाव
पांच को मारि पचीस को वशकरि तीनको पकरि मंगाव
कहै कबीरा धर्मदास से शब्द में सुरति लगाव ॥